

भारत विभाजन के परिप्रेक्ष्य में 'आधा गाँव' और 'तमस' की मानसिकता



अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ से एम. फिल. की
उपाधि हेतु
प्रस्तुत यह शोध-प्रबन्ध

निर्देशक :

प्रोफेसर शैलेश जैदी
पी-एच. डी., डी. लिट्.

सोधार्थी :

मेराज अहमद

हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़-२०२००२



DS1905



भूमिका

प्राचीन काल से ही भारत में विभिन्न धर्म एवं संस्कृतियाँ फलती फूलती चली आ रही हैं । इस्लाम धर्म एवं मुस्लिम राज्य के भौतिक प्रवेश के बाद भी समन्वय की स्थिति पूर्वत रही । परिवर्तन केवल इतना हुआ कि जहाँ अन्य धर्म एक दूसरे में मिल गये या फिर मिला लिये गये वहीं इस्लाम का विप्लवन नहीं हुआ, परन्तु धार्मिक आचार संहिता का आदान-प्रदान अवश्य हुआ । सांस्कृतिक आदान-प्रदान के क्रम में इस्लामी और प्राचीन भारतीय संस्कृति का आदान-प्रदान पहले जैसा ही होता रहा । इसके साथ ही दोनों धार्मिक समुदायों के बीच छुट-पुट रूप से झगड़े-फसाद भी होते रहे परन्तु इनको कभी भी विस्तृत साम्प्रदायिक आधार प्राप्त नहीं हुआ । यद्यपि उस समय आज की अपेक्षा लोगों के जीवन पर धर्म का नियन्त्रण बहुत अधिक था । समन्वय की यह स्थिति उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक बनीरही । इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों ने बिना किसी भेद-भाव के 1857 के संग्राम में मुस्लिम शासक बहादुरशाह जफर का नेतृत्व स्वीकार किया ।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक भारत में साम्प्रदायिकता का अस्तित्व नहीं था । उससे पहले भारत में साम्प्रदायिकता का जन्म आधुनिक घटना है । साम्प्रदायिकता जन्म अलगसंवादी विचार के तिर अंग्रेजों को उत्तरदायी माना जाता है । परन्तु उस मान्यता की सच्चाई के सन्दर्भ में सवाल यह उठता है कि हमने सत्यता से ऐसा क्यों होने दिया ? पहले परिणामों को अनदेखा क्यों कर दिया गया ?

भारत में साम्प्रदायिकता के सन्दर्भ में ध्यान देने योग्य एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि यहाँ पाश्चात्यीकरण के जड़ते प्रभाव के कारण धार्मिक संस्थाओं को यह भ्रम हो गया कि पाश्चात्यीकरण के प्रभाव से कालान्तर

में धार्मिक शक्ति क्षीण हो जायेगी । धर्म की ओर उन्मुख होने वाले आन्दोलनों का इतिहास विषमव्यापी है । सारे संसार में इसाईयत और इस्लामियत आदि धार्मिक समुदायों में मूलतः पुनर्जागरण की भावना समय पर उठती रही है । यह प्रवृत्ति नये-नये मिथकों को जन्म देकर इतिहास की समझ को विकृत करती रही है । भारतीय हिन्दुत्व के पुनर्जागरण में तिलक द्वारा प्रारम्भ गणेशोत्सव और शिवाजी को हिन्दू नायक के रूप में स्थापित करने की प्रीतियाँ में पुनर्जागरण के फलस्वरूप नये मिथक का जन्म और इतिहास के विकृत रूप का उदाहरण प्रत्यक्ष देखा जा सकता है । विभिन्न हिन्दू-मुस्लिम धार्मिक सुधारवादी आन्दोलन भी इसी शृंखला की कड़ी हैं ।

अंग्रेजों ने इस विकृति का लाभ भर उठाया । स्वाधीनता संग्राम में भी इसी नीति का अनुसरण किया । दोनों सम्प्रदायों के मध्य उपजे छोटे से छोटे मतभेद को अपनी सुदृढ़ता के लिए हथियारके रूप में प्रयोग किया । भाषायी विवाद को पराश्रय, मुसलमानों द्वारा आरक्षण की माँग को पराश्रय जैसे अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं । कांग्रेस और लीग का जन्म भी इसी शृंखला की कड़ी हैं । परन्तु साम्प्रदायिकता के जन्म के मूल कारण में यही पुनरौत्थानवादी मनोवृत्ति का विकास ही प्रमुख रहा है । इसका उत्पन्न परिणाम.....असमानता पूर्ण वितरण फलस्वरूप जन्म लेते राजनैतिक स्वार्थों की बढ़ोतरी के कारण अपने जन्म से भारत को मिलने वाली स्वतन्त्रता का समय आते-आते साम्प्रदायिकता उत्कर्ष पर पहुँच गयी । जिसकी अन्तिम परिणति भारत के सामने विभाजन के रूप में सामने आयी ।

भारतीय राजनीतिको, विशेष रूप से कांग्रेसियों का विचार था कि भारत की बढ़ती साम्प्रदायिकता को रोकने का अब केवल अन्तिम अस्त्र भारत विभाजन है । देश के दो टुकड़े होने के बाद भारत को आजादी मिलेगी ।

विभाजन के बाद मिली स्वतन्त्रता के बाद देश ने एक लम्बा रास्ता तैयार लिया है और विकास की दिशा में इसकी प्रगति अनेक क्षेत्रों में उल्लेखनीय है । लेकिन इसके दूर्भाग्य का जो सबसे महत्व पूर्ण पक्ष रहा है वह यह कि ब्रिटिश उपनिवेशवाद का विस्तर गोल होने के बाद धर्म निपेक्षता की आधार भूमि पर निर्मित भारत में आज भी साम्प्रदायिकता की वही स्थिति और रूप विद्यमान है जो विभाजन के समय था । यही नहीं, उसका रूप और भी अधिक विकृत हो गया है । सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक विकास और राजनीतिक जागृत के बावजूद भारतीय संविधान में उल्लेखित धर्मनिपेक्षता को ठोस सामाजिक रूप देते हुए साम्प्रदायिकता की समस्या का सही ढंग से अब तक मुकाबला नहीं हो पाया है, वरन् सुधरे हुए रूप में और भी अधिक और खतरनाक ढंग से इसका विकास हुआ है । साम्प्रदायिकता का यह रूप अगर से जन सामन्य को धर्म का हितैषी प्रतीत होता है, किन्तु इसका वास्तविक चरित्र अवाम को विभिन्न धार्मिक खानों में विभक्त करके उसकी सामाजिकता को समाप्त करने में कार्यरत है । वह कार्य इतनी सफाई के साथ हो रहा है कि मनुष्य कब इसका शिकार हो जाता है उसे आभास तक नहीं हो जाता है ।

वस्तुतः वर्तमान साम्प्रदायिकता प्रतिक्रियावादी तत्वों के लिए खन्दक की लड़ाई की भाँति है, इसके लिए वे धर्म एवं धार्मिक आस्था को वैयक्तिकक्षेत्र से हटाकर सार्वजनिक क्षेत्र के उत्सव के रूप में परिवर्तित करने में लगे हैं । इस प्रक्रिया में अनेक नये-नये पंथों एवं सम्प्रदायों का जन्म हुआ है । रूढ़ पादिता में सुधार का आभास कर उसे और भी अधिक रूढ़ बनाया जा रहा है फलस्वरूप साम्प्रदायिकता से सम्बन्धित नयी गणनीयता दिन-प्रति-दिन विकसित होती जा रही है और उसका प्रभाव पहले से कहीं अधिक खतरनाक सिद्ध हो रहा है ।

साम्प्रदायिकता के इस भयावह अन्धकार में मानवीय रिश्तों और सम्बन्धों की पहचान धुँधली होती जा रही है । अब लोग हिन्दू अथवा मुसलमान के विरोधी खेलों में बँटने के बजाय एक कदम आगे अन्य नये-नये सम्प्रदायों और वर्गों में विभाजित हो रहे हैं । अकाली, हिन्दूमहा-सभाई आर्यसमाजी जमाते इस्लामी इत्यादि के साथ-साथ बजरंग दल शिव-सेना विश्व हिन्दू परिषद और आदम सेना जैसे नये-नये वर्गों एवं सम्प्रदायों का जन्म हो रहा है । आज की साम्प्रदायिकता का एक राजनैतिक चरित्र होता है । साम्प्रदायवादी अपने-अपने सम्प्रदायों को सुदृढ़ बनाने के लिए किसी भी वैयक्तिक झगड़े को साम्प्रदायिक झगड़े की दिशा में मोड़कर अपने राजनैतिक स्वार्थों की सिद्धि में लगे हैं । इस प्रक्रिया में सबसे अधिक घाटा आम जनता का हो रहा है चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान अथवा अन्य धर्मावलम्बी ।

जनसाधारण के हितों और अहितों के प्रभाव से सम्पूर्ण राष्ट्र प्रभावित होता है यही कारण है कि समसामयिक साम्प्रदायिकता की समस्या से राष्ट्र का सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक जीवन अवलूट सा हो गया है । अतः साम्प्रदायिकता की समस्या से त्राण किसी विशेष धर्म या जाति के हित में न होकर सम्पूर्ण राष्ट्र के हित में है । इससे छुटकारा पाने की दिशा में प्रथम चरण यह होगा कि उस मानसिकता की समझें जो कि साम्प्रदायिकता के संदर्भ में कार्यरत है । साम्प्रदायिकता के ऐतिहासिक पक्षों की जानकारी के बिना इसे समझ पाना संभव नहीं है । क्योंकि साम्प्रदायिकता को जन्म देने वाले व्यक्ति जिस वर्ग के रहे हैं, बदलती हुई व्यवस्था में नये चेहरे के रूप में पीछे वहीं चेहरे मौजूद हैं । इसलिए मौजूदा साम्प्रदायिक मानसिकता की समझ के प्रश्न को लेकर हमें विभाजन पर आकर रुकना पड़ता है क्योंकि विभाजन भारत में विकसित होने वाली साम्प्रदायिकता के उत्कर्ष का परिणाम था ।

जब तक जनसामान्य की चेतना में उलसी हुई साम्प्रदायिक गुथियों को सुलझाया नहीं जायेगा, इसके बाह्य एवं आन्तरिक चरित्र की पहचान नहीं की जायेगी, तब तक साम्प्रदायिकता के विरुद्ध सकारात्मक प्रयास संभव नहीं है । इस दिशा में साहित्यकारों की भूमिका भी अन्य प्रयासों के साथ-साथ असरदार हो सकती है ।

साम्प्रदायिकता के विरुद्ध सकारात्मक प्रयास की दिशा में साहित्यकारों ने योगदान दिया भी है । बँटवारे की विभीषिका से उत्पन्न होने वाले सम्बन्धों एवं मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों की सांस्कृतिक आधार पर मानवीय दृष्टि से देखने वालों में साहित्यकार ही महत्वपूर्ण शक्तियों में से प्रमुख थे जिन्होंने संस्कृति को बचाने का प्रयास किया । इनके योगदान के रूप में विभिन्न भारतीय भाषाओं में विभाजन की त्रासदी से सम्बन्धित रचनात्मक सृजन को देखा जा सकता है ।

हिन्दी साहित्य में भी विभाजन से सम्बन्धित अनेक रचनाओं का सृजन हुआ है, इसमें क्या साहित्य का स्थान अग्रणीय है । विस्तृत फलक के कारण इसको सम्पूर्णता में उद्घाटित करने की दिशा में सर्वाधिक संभावना उपन्यास विधा में है । साम्प्रदायिकता के प्रभाव से जन्मी पाश्चवक वृत्तियाँ एवं विभिन्न सम्प्रदायों की मानसिकता का विभाजन सम्बन्धी उपन्यासों के द्वारा उद्घाटित हुआ है ।

‘तमस’ और ‘आधागाँव’ दो अलग-अलग सम्प्रदायों हिन्दू और मुस्लिम के विचार धारा की पृष्ठभूमि को आधार बना कर लिखे गये उपन्यास हैं । इन दोनों का सम्य-काल भी भिन्न है । एक उपन्यास में वर्णित घटनाएँ वर्तमान पाकिस्तान स्थिति रावल पिण्डी से सम्बन्धित हैं जब कि काल विभाजन से कुछ समय पहले का है । दूसरे की घटनाएँ सुदूर मध्य भारत

के उत्तरपूर्वी प्रदेश के गाजीपुर जिले के गंगौली ग्राम से सम्बन्धित हैं । एक में नगरीय जीवन के चित्रण की अधिकता है दूसरे में ग्रामीण, यद्यपि इन विशेषताओं से युक्त अन्य अनेक उपन्यास और भी हैं, परन्तु 'लघु-शोध प्रबन्ध' की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए विभाजन की विभीषिका से सम्बन्धित सम्पूर्ण भारतीय मानसिकता को पूर्णता में समझने के लिए 'तमस' और 'आधागाव' का चयन किया गया है ।

हिन्दी साहित्य में इस विषय से सम्बन्धित कोई सुविचारित शोध कार्य अभी तक प्रकाश में नहीं आया है । कुछ एक निबन्ध और एकाध शोध-प्रबन्ध हैं भी तो उनका आग्रह विभाजन की त्रासदी से सम्बन्धित मानसिकता के उद्घाटन के बजाय विभाजन की घटनाओं के यथार्थ अंकन एवं उनके साहित्यिक मूल्यांकन की तरफ अधिक रहा है । उनसे विभाजन की मानसिकता की पहचान नहीं हो पाती है, न ही विभाजन के प्रभाव को गहराई में उतरकर देखा ही जा सकता है । इस 'लघु शोध-प्रबन्ध' के माध्यम से शोध के कुछ ऐसे मार्ग प्रशस्त हों जो साम्प्रदायिक सद्भावना का मार्ग प्रशस्त कर सकें, यही मेरा प्रयास है ।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध पाँच अध्यायों में विभक्त है । प्रथम अध्याय में भारत के स्वाधीनता संग्राम पर संक्षिप्त रूप से विचार करते हुए उसकी विभाजन मूलक प्रवृत्तियों के उद्घाटन का प्रयास किया गया है । इस अध्याय का मूल उद्देश्य हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता के जन्म, विकास और उससे प्रेरित संघर्ष की जड़ तक पहुँचना है ।

द्वितीय अध्याय में विभाजन की ऐतिहासिक प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए उसकी त्रासदी से पीड़ित मानव मानसिकता के परिवर्तन और उसके प्रभाव को लक्षित किया गया है ।

तृतीय अध्याय में भीष्मसाहनी और राही मासूम रजा के जीवन दर्शन को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों पर विचार करते हुए दोनों रचनाकारों की रचनात्मक पृष्ठभूमि निर्धारित करने का प्रयास किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में 'तमस' और 'आधागाँव' में अंकित विभाजन की त्रासदी के यथार्थ को रेखांकित करते हुए उसके जनसामान्य पर पड़ने वाले प्रभाव को इन उपन्यासों के माध्यम से स्पष्ट करते हुए उसके ऐतिहासिक प्रभाव के यथार्थ पर विचार किया गया है।

पंचम अध्याय में सम्पूर्ण अध्ययन के निष्कर्ष को सार-संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है।

हिन्दी साहित्य के प्रख्यात आलोचक एवं कवि प्रोफेसर शैलेश जैदी के निर्देशन में यह लघु शोध-प्रबन्ध लिखा गया है। उन्होंने न केवल शोध विषय के चयन से लेकर शोध पूर्ण होने की प्रक्रिया के प्रत्येक चरण में मेरे साथ अपने धैर्य का परिचय दिया है, वरन् शोध कार्य के अतिरिक्त मेरे व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों को आकार देने का अधिक प्रयास किया है। इसे मैं अपना सौभाग्य मानते हुए उनके चरणों में श्रद्धान्तर्द्ध हूँ।

विभागाध्यक्ष प्रोफेसर के० पी० सिंह जी अपनी तमाम व्यस्तताओं के बावजूद मेरे शोध कार्य के प्रति अपेक्षा से अधिक कृपालु रहे हैं और सदा उत्साहित करते रहे हैं। उनका मैं सदैव आभारी रहूँगा। हिन्दी विभाग के जिन अन्य विद्वानों ने परोक्ष या अपरोक्ष रूप से मेरी सहायता की है मैं उन लोगों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। विभागीय मित्रों में श्री अजय बिस्तारिया, श्री आशिक अली, श्री तारिक अज़ीज, कुमारी रंजना, श्री सिद्दीक ख़ाँ ने अपनी विद्वतापूर्ण बहसों के द्वारा सामग्री एकत्र करने में

यथेष्ट सहायता की है । मित्रवत् भाई आफताब ने सामग्री के एक्कीकरण से लेकर अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद करने में मुझे भरपूर सहयोग दिया । इन लोगों का मैं सदैव आभारी रहूँगा ।

मित्र राशिद, रूमपार्टनर कलीमुद्दीन भाई और कुँवर असद की भी सहायता बराबर मिलती रही है । इन सब के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ ।

मामू श्री अहमद ख़ाँ और पिता श्री जमाल अहमद ने विपरीत आर्थिक परिस्थितियों के बावजूद शोध कार्य के समय मुझे अर्धाभाव का आभास तक नहीं होने दिया । शमून के पास से आने वाले खत और सज्ज की धादें भी मुझे बराबर बल प्रदान करती रहीं । निःसन्देह इस शोध-प्रबन्ध की पूर्णता पर मुझसे अधिक इन लोगों को प्रसन्नता का अनुभव हो रहा होगा ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के लिए सामग्री संचयन में सेमिनार इन्चार्ज डॉ० उस्मान ख़ाँ एवं पुस्तकालय से सम्बन्धित श्री शिवदत्त शर्मा जी और श्री राक़िम अली ने अपना भरपूर सहयोग दिया । इसके साथ स्वच्छ एवं शीघ्र टंकड़ में श्री प्रताप सिंह जी ने अपनी तत्परता दिखाई । इन सब लोगों के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ ।

विनीत

मेराज अहमद

दिनांक 4-2-1991

॥ मेराज अहमद ॥

विषय-सूची

भूमिका

प्रथम अध्याय: स्वाधीनता संग्राम की विभाजन मूलक पृष्ठभूमि

1

॥अ॥ 1857 का संग्राम

॥ब॥ भारतीय राष्ट्रवाद: वैचारिक सांस्कृतिक धरातल; आजादी का प्रश्न और नेतृत्व की स्थिति; हिन्दू-मुस्लिम छेड़ों में जूटी मानसिकताएँ; हिन्दू वैचारिकता-ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिप्रेक्ष्य; मुस्लिम वैचारिकता-ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिप्रेक्ष्य; राष्ट्रवाद का उग्रस्वरूप ।

द्वितीय अध्याय: विभाजन की त्रासदी

46

हिन्दू-मुस्लिम तथा अंग्रेजों का दृष्टिकोण; पाकिस्तान का सवाल; विभाजन की प्रक्रिया; साम्प्रदायिकता से ग्रस्त हिन्दू-मुस्लिम मानसिकता; साम्प्रदायिक दंगे; शरणार्थी; रोशनी की किरण;

तृतीय अध्याय: भीष्म साहनी और राही मासूम रजा की रचना-

त्मक पृष्ठभूमि

76

॥अ॥ भीष्म साहनी; पारिवारिक जीवन और आर्य समाजी वातावरण का प्रभाव; लाहौर प्रवास काल; व्यापारी जीवन के अनुभव; विभाजनोपरान्त दिल्ली के साहित्यिक समाज से सम्पर्क; प्रगतिशील विचारधारा का प्रभाव; रूस यात्रा; स्वतन्त्र लेखन ।

॥ब॥ राही मासूम रजा; पारिवारिक जीवन और वातावरण;
 बीमारी के बीच गुजरता बचपन; वैचारिक स्वतन्त्रता और
 सामाजिक मूल्यों के टूटने-जुड़ने की स्थिति; इलाहबाद
 और निकलत प्रकाशन; अलीगढ़ का साहित्यिक वातावरण;
 दूसरा विवाह और अलीगढ़ से पलायन; फिल्मी जीवन का
 आरम्भ ।

चतुर्थ अध्याय: 'तमस' और 'आधागाँव': देश विभाजन की त्रासदी

में चीखता झुलसता यथार्थ

104

॥अ॥ 'तमस'; साम्प्रदायिकता के सन्दर्भ में प्रतिक्रियावादी शक्तियों
 की भूमिका; ब्रिटिश नीति; साम्प्रदायिक दंगे; जनसाधारण
 की मानसिकता; सकारात्मक शक्तियाँ ।

॥ब॥ 'आधागाँव'; कांग्रेस और मुस्लिम जमींदारी का आपसी
 सम्बन्ध; मुस्लिम लीग का प्रभाव; हिन्दू प्रतिक्रियावादी
 शक्तियाँ; जनसामान्य की मानसिकता का यथार्थ ;
 सकारात्मक शक्तियाँ; विभाजनोपरान्त पारिवारिक विघ-
 टन पर मुस्लिम समाज पर प्रभाव ।

पंचम अध्याय: उपसंहार

140

परिशिष्ट

147

:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:

प्रथम अध्याय

:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:

स्वाधीनता संग्राम : विभाजन मूलक पृष्ठ भूमि

=====

भारतीय स्वाधीनता संग्राम की पृष्ठ भूमि में सन् 1857 के गदर की महत्वपूर्ण भूमिका स्वीकार की जाती है । दिल्ली को केन्द्र मान कर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विभिन्न क्षेत्रों से अपने प्राण हथेली पर रख कर जिस प्रकार भारतीय सपूत क्रान्ति की आग में कूद पड़े और जिस क्रूरता के साथ उनका दमन किया गया उसके प्रकाश में इतना सहज रूप से कहा जा सकता है कि यह गदर योजना बद्ध पद्धति से नहीं किया गया । यदि गदर के मूल में एक सुविचारित एवं सुनिश्चित देश व्यापी वैचारिकता का योग होता तो ब्रिटिश सरकार के लिए कदाचित यह संभव नहीं था कि वह इतनी आसानी से इसे कुचल सकती ।

वस्तुतः सन् 1857 के गदर से पहले भारतीय जन जीवन में एक राष्ट्र की भावना का लगभग अभाव सा था । इसके पीछे कार्य करने वाली शक्तियाँ अलग-अलग थीं । सौ वर्ष से भी अधिक के समय से कम्पनी शासन की विस्तारवादी नीति के अन्तर्गत अंग्रेज अपनी विभिन्न विजयों के द्वारा इस देश पर अपनी पकड़ मजबूत करते चले आ रहे थे । इससे भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों में ब्रिटिश-शासन के प्रति घृणा और असंतोष बढ़ता जा रहा था । किन्तु यह असंतोष सम्पूर्ण देश को एक इकाई मानकर राष्ट्र भावना के भीतर से जन्मा असंतोष नहीं था । यह एक ऐसा परिस्थिति जन्य असंतोष था जिसके पीछे अलग-अलग छोटे-बड़े स्वार्थ काम कर रहे थे । फल-स्वरूप इस असंतोष के तीव्रतर और देश व्यापी होने के बाद भी इसमें एक प्रकार का विखराव था जो बजाहिर एक जुट शक्तियों

को यथार्थ के स्तर पर भीतर-भीतर विभिन्न खानों में बाँटे हुए था।

ब्रिटिश शासन की भूमि और राजस्व नीतियों के अन्तर्गत बड़ी संख्या में किसान भू-स्वामियों की जमीन उनके कब्जे से निकल कर व्यापारियों और महाजनों के हाथों में आ गयी थी। किसान भूस्वामी बुरी तरह कर्ज के बोझ तले दब गये।¹ तत्कालीन न्याय व्यवस्था इतनी जटिल थी कि कर्ज में दबे किसानों के लिए उसका लाभ उठा पाना संभव नहीं था। न्याय प्रणाली की जटिलता के साथ-साथ भ्रष्टाचार का भी बोल बाला था। ब्रिटिश अधिकारी विलियम एड्स वर्ड्स ने विद्रोह के कारणों की चर्चा करते हुए लिखा है, "पुलिस जनता के लिए चाबुक की तरह है और उसकी उत्पीड़न और बल पूर्वक उगाही हमारी सरकार के प्रति असंतोष के मुख्य कारणों में से थी।"² भ्रष्टाचार के द्वारा छोटे अफसरों ने रैयतों और जमींदारों के मध्ये अपने आप को समृद्ध बनाने का कोई रास्ता नहीं छोड़ा। परिणाम स्वरूप कृषक वर्ग में दिन-प्रतिदिन गरीबी बढ़ती गयी। लोगों की बढ़ती हुई गरीबी ने उन्हें निराशोन्मत्त बना दिया और अपनी दशा सुधारने की आशा ने विद्रोह में शामिल होने के लिए प्रेरित किया।

दूसरी ओर अंग्रेजों की राज्य विस्तार की नीति के फलस्वरूप छोटे-छोटे भारतीय राज्यों के विघटन एवं ब्रिटिश सरकार में विलयन की प्रक्रिया तीव्रतर होती जा रही थी। इन राज्यों से सम्बद्ध वह

1- विपिन चन्द्र, आधुनिक भारत, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, सं० 1976, पृ० 108

2- वही, पृष्ठ 108

कुलीन समाज जो प्रशासनिक अधिकारों के साथ ठाठ दार जीवन का निर्वहण कर रहा था उसे विशेष चोट पहुँची और समाज में उसकी वह स्थिति नहीं रही जिसका वह स्वयं को अधिकारी समझता था । स्पष्ट है कि उसके भीतर ब्रिटिश सरकार के प्रति आक्रोश की चिंगारी सहज रूप से सुलगने लगी । चूँकि ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य भारत से अधिक से अधिक लाभ उठाना था इस लिए उसकी भारतीयों के प्रति कोई रागात्मकता नहीं थी । कदाचित यही कारण है कि ब्रिटिश अधिकारियों ने भारतीय आम जनता की बात तो अलग, उच्च वर्ग के भारतीयों के साथ भी सामाजिक स्तर पर मेल-जोल का सम्बन्ध बढ़ाना उपयुक्त नहीं समझा । वे शासक और शासित की मानसिकता को बनाए रखने में ही अपना गौरव समझते थे । सर्वोच्च श्रेणी का भारत-वासी भी अफसरों से इतना आर्तकित था कि उनके समक्ष कौपता हुआ उपस्थित होता था और अपने होठों पर शालीनता की चुप्पी की एक मुहर लगाकर कड़वे मन से अपनी इस मनःस्थिति को झेल रहा था ।¹ उसकी यही मनःस्थिति उसके भीतर एक ज्वाला मुखी को जन्म दे रही थी जो किसी समय भी फूट पड़ने को तैयार थी ।

ब्रिटिश शासन पूर्व साहित्य एवं सांस्कृतिक कार्यों में लगे वर्गों को राज्यों का संरक्षण प्राप्त था । धार्मिक व्यक्तियों पंडित, मौलवियों और सूफी-सन्तों के भरण-पोषण की जिम्मेदारी तत्कालीन शासक वर्ग पर थी । राज्यों पर कम्पनी शासन के प्रभावी हो जाने के कारण इस वर्ग को मिलने वाला संरक्षण समाप्त हो गया । मन्दिरों और मस्जिदों

तथा उसके पुरोहितों और इमामों या लोकोपकारी संस्था की जमीनों पर लगान लगाने से भी धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँची। भारतीय शासन के अन्तर्गत इस तरह की जमीनों को कर से मुक्त रखा जाता था।¹ परिणाम स्वरूप निकट भविष्य में जीवन यापन का कोई अनुकूल रास्ता न देख इन लोगों ने भी विदेशी शासन के प्रति घृणा फैलाने में अपने प्रभावों का उपयोग करना प्रारम्भ कर दिया।²

कम्पनी शासन के सुदृढ़ होने के साथ-साथ ईसाई धर्म प्रचार में ब्रिटिश शासन के खुले आम समर्थन ने भी लोगों को ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध करने में प्रेरित किया। सन् 1857 में आर० डी० इंगलस ने हाउस आफ कॉमंस में कहा कि, "विधाता ने हिन्दुस्तान का विशाल साम्राज्य इंग्लैंड को इस लिए सौंपा है कि ईसा मसीह का झंडा भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक शान से फहराए।"³

तत्कालीन शासक वर्ग के विद्रोही होने के मुख्य कारणों में डलहौजी की बिना उत्तराधिकारी वाले राज्यों की हस्तांतरण की नीति को भी स्पष्ट रूप से रेखांकित किया जाना चाहिए। नाना साहब, झांसी की रानी लक्ष्मी बाई, बहादुर शाह ज़फ़र इत्यादि के विद्रोही बनने में राज्य हस्तांतरण की इसी नीति को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। सन् 1849 में डलहौजी की घोषणा कि, "बहादुर शाह ज़फ़र के उत्तराधिकारी को ऐतिहासिक लाल किले को छोड़ कर कुतुब मीनार

1- विपिन चन्द्र, आधुनिक भारत, पृष्ठ 111

2- वही पृष्ठ 109

3- वही पृष्ठ 111

के पास एक मामूली से मकान में रहना पड़ेगा";¹ अपने में एक जबरदस्त घटना थी । दूसरी तरफ सन् 1856 में अवध की जनता को ताल्लु केदारों के उत्पीड़न से मुक्ति दिलाने का भुलावा देकर अवध को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया । किन्तु इस विलयन से जनता के उत्पीड़न में कोई कमी नहीं आयी । हठा शोषण की प्रक्रिया और तीव्र अवश्य हो गयी । फलस्वरूप ताल्लुकेदारों के आक्रोश के साथ जनता में भी विद्रोह मूलक आक्रोश ने जोर पकड़ा ।

विद्रोह के तत्कालिक कारण सैनिक असंतोष के पीछे भी कोई एकता अथवा समेकित भावना का दर्शन नहीं होता । वस्तुतः सैनिकों के असंतोष का कारण निजी सैनिक स्वार्थ एवं निजी भावनाओं का उबाल रहा है । जिन सिपाहियों ने भारत पर अंग्रेजों की विजय का रास्ता साफ किया था उसमें "अधिकांश सिपाही अवध के रहने वाले थे।"² इन सिपाहियों के हृदय में अपने क्षेत्र के प्रति प्रेम और निष्ठा की भावना अंग्रेजों की फौज में कार्य करने के बावजूद विद्यमान थी । दूसरी तरफ अंग्रेजी फौज के अन्तर्गत अंग्रेज अधिकारियों का व्यवहार उनके प्रति अच्छा नहीं था । उसे एक निमृष्ट प्राणी समझा जाता था । अंग्रेज अधिकारी उनसे 'हब्शी' इत्यादि कह कर गालियों की भाषा से कम में बात नहीं करते थे । अंग्रेज फौजियों के समान कौशल एवं प्रतिभा के बावजूद उनकी उन्नति की संभावना नहीं के बराबर थी । कोई भी भारतीय सिपाही सूबेदार के पद से ऊँचे पद तक नहीं पहुँच सकता था ।

सन् 1856 में बने कानून के अन्तर्गत भरती होने वाले रंग रूटों को सुमुद्र पार जाकर काम करने का वादा करना पड़ता था, जबकि

1- विपीन चन्द्र, आधुनिक भारत, पृष्ठ 109

हिन्दू धर्म में समुद्र पार करने से धर्मच्युत हो जाने की मान्यता थी । क्रान्ति का प्रारम्भ भी सिपाहियों की धार्मिक भावना की सर्वोपरिता के कारण हुआ । नयी मिली एन फील्ड रायफलों के कारतूसों में लगी चिकनाई में गाय और सूअर की चर्बी का सँदेह था ।

उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश में यह स्पष्ट हो जाता है कि आन्दोलन के पीछे कार्य करने वाली शक्तियाँ विभिन्न-विभिन्न थीं । उनकी एकता के मूल में केवल ब्रिटिश शासन के प्रति विभिन्न वर्गों की संचित शिकायतों के फलस्वरूप उत्पन्न घृणा थी । उनकी कल्पना में अपने हितानुसार स्वतन्त्र भारत की तस्वीर अलग-अलग रंग की थी । उनके पास कोई ऐसा एक लक्ष्य नहीं था, सत्ता पाने के बाद जिसमें लागू किया जा सके । आधुनिक राष्ट्रीयता की भावना से उस समय तक भारतवासी अनभिज्ञ थे । देश भक्ति का अर्थ था अपने छोटे से क्षेत्र या इलाके अथवा अधिक से अधिक अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम । समान अखिल भारतीय हित और संयुक्त भारतीयों को एकता बद्ध करने वाले सूत्र उस समय तक नहीं थे । परन्तु इसमें सँदेह नहीं किया जा सकता है कि गदर में भाग लेने वाले क्रान्तिकारी हिन्दू या मुसलमान जैसे खेमों में विभाजित न होकर बहादुर शाह ज़फर के नेतृत्व में एक जुट होकर एक शक्ति इकाई के रूप में अपने प्राणों की बलि देने के लिए दृढ़ संकल्प थे, किन्तु आम जनता का जो सहयोग उन्हें मिलना चाहिए था वह विकराल रूप से फैली दहशत और कुछ हद तक विद्रोह में शामिल होने वाले विभिन्न वर्गों की अपनी स्वार्थ भावनाओं के कारण क्रान्तिकारियों को नहीं मिल सका ।

विद्रोह असफल हो जाने से ब्रिटिश शासन का भारत के एक बड़े भू-भाग पर परीक्ष रूप से अधिकार स्थापित हो गया । लेकिन विद्रोह की असफलता से जन्मी उदासीनता में पूर्ण नैराण्य के चिह्न नहीं देखे जा

सकते हैं । ब्रिटिश शासन से मुक्त होने की आशा अब भी कहीं-न-कहीं जीवित थी । इस सम्बन्ध में रजनी पाम दत्त का कथन महत्व पूर्ण है । "1857 का विद्रोह बुनियादी तौर पर दक्खिनास और सामन्ती शक्तियों तथा पदच्युत राजाओं द्वारा अपने अधिकारों और विशेष सुविधाओं की माँग के लिए किया गया विद्रोह था । विद्रोह के इस प्रतिक्रियावादी स्वरूप के कारण जनता के व्यापक समर्थन का अभाव रहा और उसे विफल हो जाना पड़ा । फिर भी इस विद्रोह से यह बात स्पष्ट हो गयी कि सतह के नीचे जनता में बेचैनी और असंतोष की कैसी भयानक आग सुलग रही है और इससे अंग्रेज सौदागरों में अभूत पूर्व घबराहट फैली" ¹ अपनी विफलता में भी इसने महान उद्देश्य की पूर्ति की । यह उस राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन का प्रेरणा स्रोत बन गया, जिसने वह हासिल कर दिखाया, जो विद्रोह हासिल नहीं कर सका । ²

सभी विद्रोही नेता बहादुर शाह को सम्राट मानते थे । विद्रोही चाहे मेरठ का रहा हो या कानपुर का अथवा दिल्ली का, चाहे हिन्दू रहा हो या मुस्लिम उसकी पहली प्रतिक्रिया दिल्ली जाने की होती थी । विद्रोह की एकता के केन्द्र में बहादुर शाह ही थे । उन्हीं के नाम पर सिक्के ढाले गये और उन्हीं के नाम पर आदेश जारी किया जाता था । इस प्रकार 1857 के विद्रोह में सभी वर्गों एवं धर्मावलम्बियों के द्वारा बहादुर शाह को प्रदान की जाने वाली महत्ता ने ब्रिटिश सरकार के

1- रजनी पाम दत्त, आज का भारत, दि मैक मिलन इण्डिया लिमिटेड नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, सं० 1977, पृष्ठ 317

2- विपिन चन्द्र एवं अन्य, भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित, सं० 1990, पृष्ठ 10

सामने एक बात स्पष्ट कर दी कि हिन्दू और मुस्लिम शक्तियाँ संगीठित होने पर पर्याप्त रूप से खतरनाक हो सकती हैं। सरकार की दृष्टि में हिन्दुओं की अपेक्षा मुस्लिम शासक एवं सामन्त वर्ग इस दृष्टि से कहीं अधिक खतरनाक था कि वह इस देश पर एक लम्बे समय तक शासन कर चुका था और दासता का जीवन उसके लिए अन्य धर्मावलम्बियों की अपेक्षा कहीं अधिक अपमान पूर्ण था।

विचारणीय प्रश्न यह है कि 1857 के गदर में उस राष्ट्रवादी चिन्तन का कोई योग दृष्टिगत नहीं होता जिसका श्रेय राजा राम मोहन राय को दिया जाता है। यदि भारतीय राष्ट्रवाद का शुभारम्भ 1828 ई० से मान लिया जाय और राजा राम मोहन राय को इसका अधिष्ठाता स्वीकार किया जाय तो इस तथ्य को भी स्वीकार करना होगा कि इस राष्ट्रवाद का धरातल वैचारिक रूप से निनिश्चित ही वह नहीं था जो 1857 के क्रांतिकारियों का था। इसलिए अपेक्षित ज्ञान पड़ता है कि भारतीय राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय और आन्दोलनों के स्वरूप पर कुछ गम्भीरता से विचार कर लिया जाये। इसके अभाव में उस मानसिकता को नहीं समझा जा सकता है जो समय की परिस्थितियों के साथ धीरे-धीरे हिन्दुओं और मुसलमानों के पृथक-पृथक वैचारिक खेमों में बंट गयी।

भारतीय राष्ट्रवाद : वैचारिक सांस्कृतिक धरातल

वस्तुतः मिथक और यथार्थ के अन्तर को समझे बिना भारत की राष्ट्रवादी विचार धारा और उसके सांस्कृतिक धरातल का मूल्यांकन समीचीन नहीं कहा जा सकता है। पाम दत्त जैसे इतिहास पर पैनी

दीष्ट रखने वाले लेखक ने राजा राम मोहन राय को भारतीय राष्ट्रवाद के जनक के रूप मान्यता दी है । आर्य समाज प्रार्थना समाज के अतिरिक्त मुस्लिम धार्मिक सुधारवादी आन्दोलनों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि भारतीय जनता के राष्ट्रीय जागरण का प्रतिकूलन धार्मिक क्षेत्र में हुआ । पुराने धार्मिक दीष्टकोण रीतिरिवाज और संगठन एवं नये सामाजिक आर्थिक यथार्थ के पारस्परिक विरोध के कारण देश में धार्मिक सुधार आन्दोलनों का जन्म हुआ ।¹ इसका अर्थ यह हुआ कि विज्ञान, जन्तन्त्र और राष्ट्रवाद के आधुनिक विश्व की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने के दिशा में इन सुधारवादी आन्दोलनों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है ।

निःसन्देह अपने-अपने स्तर पर इन सुधार वादी आन्दोलनों ने धर्म की रूढ़िगत मान्यताओं एवं पुराने रीतिरिवाजों और परम्पराओं को तोड़ते हुए धर्म को आधुनिक विश्व की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाते हुए उसे विज्ञान और धर्म सम्मत बनाने के प्रयास किए । परन्तु राष्ट्रीय एकता और एक जुटता की भावना पैदा करते हुए राष्ट्रवाद की भावना उत्पन्न करने में इन आन्दोलनों की कहीं तक भूमिका रही है यह प्रश्न अब भी चिन्तन की अपेक्षा रखता है ।

सन् 1828 में राजा राम मोहन राय ने लिखा था कि, "मुझे खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि धर्म के वर्तमान दौरे ने हिन्दुओं के इस बुरी तरह जकड़ रखा है कि उनके राजनीतिक हितों के बारे में कुछ

1- ए० आर० देसाई भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठ भूमि,
दि मैक मिलन कम्पनी आफ इंडिया लिमिटेड द्वारा प्रकाशित,
सं० 1977, पृष्ठ 235

किया ही नहीं जा सकता ।.....इसलिए मेरे खयाल से अब यह जरूरी हो गया है कि हिन्दू धर्म के स्वरूप में कुछ परिवर्तन लाए जाएं । कम से कम हिन्दुओं के सामाजिक और राजनीतिक हितों के लिए ऐसा करना बेहद जरूरी है ।" ¹ साफ है कि राजा राम मोहन राय का चिन्तन समूचे देशवासियों के सन्दर्भ में नहीं है । फिर उनका अन्तिम वाक्य स्पष्ट रूप से रेखांकित करता है कि उनकी सांस्कृतिक वैचारिकता के मूल में देश की सामाजिक सांस्कृति का कोई स्वरूप नहीं था ।

सन् 1923 में राजा राम मोहन राय द्वारा बंगाली नेताओं को मुद्रण स्वातन्त्र्य के सम्बन्ध में लिखे गये पत्र से न केवल उनकी वैचारिकता का वह पक्ष मुखरित होता है जो हिन्दुओं के सामाजिक और राजनीतिक हितों का प्रतिनिधित्व करता है बल्कि वह उनकी मुसलमानों के प्रति दुराव की भावना की तरफ भी संकेत करता है । "हिन्दुस्तान के अधिकांश हिस्से पर सदियों तक मुसलमानों का प्रभुत्व रहा था, जिससे यहाँ के मूल निवासियों के नागरिक और धार्मिक अधिकारों पर पदाघात होता रहता था ।.....फिर भी वे आखीर तक मुसलमान राज सत्ता के प्रति वफादार बने रहे । अन्त में परमात्मा की दया से अंग्रेज राष्ट्र को इन अत्याचारी शासकों के चंगुल से मुक्त कराने और उन्हें अपनी छत्र छाया में लाने की प्रेरणा मिली ।" ²

राजा राम मोहन राय द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज के कार्य-क्रमों में भले ही मूर्ति पूजा का विरोध करके एकेश्वरवाद को मान्यता

1- विपिन चन्द्र, भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष पृष्ठ 52

2- शंकर दत्तात्रेय जावड़ेकर आधुनिक भारत, सस्ता साहित्य मंडल नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित सँ० 1961, पृष्ठ 17

दी गयी हो या पाश्चात्य चिन्तन के सर्वोत्कृष्ट पहलुओं को सम्मिलित करने की भावना हो अथवा जाति व्यवस्था तथा बाल-विवाह का विरोध एवं विधवा पुनर्विवाह के साथ-साथ नारी शिक्षा के समर्थन के लिए संघर्ष का कार्यक्रम, प्रत्येक कार्यक्रम स्वधर्मावलम्बी जनता के हितों को दृष्टि में रखकर निर्मित किया गया ।

प्रार्थना समाज के कार्यक्रम भी इन्हीं धरातलों पर सुनिश्चित किए गये थे । इसके मुख्य संचालक राना डे उसको हिन्दू धर्म का ही एक मुख्य अंग मानते थे ।¹ द्रष्टव्य है कि राजा राम मोहन राय अथवा राना डे द्वारा किए गये सुधारों को जब राष्ट्र भावना से प्रेरित मान लिया जाता है तो कहीं न कहीं राष्ट्र भावना के मूल में हिन्दू राष्ट्र भावना का ही रेखांकन किया जाता है और भारतीय समासिक संस्कृति का उद्घोष अर्थहीन बन कर रह जाता है ।

हिन्दू धर्म के सुधार के ही लक्ष्य को लेकर बम्बई में स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रयास से आर्य समाज की स्थापना हुई । इसमें हिन्दू धर्म की पुरानी प्रवृत्तियों को जीवित करने का अधिक प्रयास किया गया । पुराणों को झूठा मानते हुए वेदों को भ्रमातीत कहा गया । ब्रह्म समाज और आर्य समाज की भाँति बहुदेववाद एवं मूर्ति पूजा का विरोध करते हुए जाति प्रथा के विरुद्ध संघर्ष, स्त्री शिक्षा का उत्थान, अस्पृश्यता का विरोध इत्यादि आर्य समाज के कार्यक्रमों में शामिल थे । ए० आर० देशाई ने आर्य समाज के सम्बन्ध में लिखा है, "वेदों की ओर चलो' उनका ऐसा नारा था जिसके पीछे राष्ट्रीय एक्यगौरव और चेतना की प्रेरणा कार्य कर रही थी । लेकिन चूँकि इसका आधार संकीर्ण था इसलिए जिस राष्ट्रीय

एकता की यह घोषणा करता था वह मुसलमानों ईसाइयों जैसी गैरे हिन्दू जातियों को समेट नहीं सका ।"। देसाई जैसे समाजवादी विद्वान भी जब आर्य समाज के कार्य-क्रमों में राष्ट्रीय एक्य और गौरव की चेतना का उल्लेख करते हैं संकीर्ण ही सही कहकर तो आम जनता की मान-सिक्तता पर उसके उन प्रभावों का अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है, जो कि हिन्दू हितों के संरक्षक थे । आर्य समाज द्वारा बीसवीं शताब्दी में प्रारम्भ किया गया शुद्धि आन्दोलन तो उसकी हिन्दूवादी रुझान को और भी स्पष्ट कर देता है ।

यह स्थिति समूचे हिन्दू धर्म की कल्पना से पृथक, अलग-अलग जातियों के मध्य भी पनपने लगी । परिणाम स्वरूप हिन्दू धर्म की विभिन्न जातियों को अपनी-अपनी संस्थाएँ पनपने लगीं । उदाहरण के रूप में उत्तर प्रदेश की कायस्थ सभा पंजाब की सरिण सभा महाराष्ट्र की सत्य शोधक सभा और केरल श्री नारायण धर्म परिचालन सभाओं का देखा जा सकता है।

हिन्दू समाज में अपनी संस्कृति तथा धर्म के प्रति बढ़ती निरन्तर जागरूकता के परिणाम स्वरूप हिन्दू धार्मिक सुधारवादी आन्दोलनों के प्रादुर्भाव के समान्तर मुसलमानों में भी विभिन्न तहरीकों के माध्यम से सुधारवादी आन्दोलन पनपने लगे । आश्चर्य की बात है कि जो मुस्लिम समाज अपने इतिहास के प्रारम्भ से ही ज्ञान-विज्ञान और कला के क्षेत्र में अपने योगदान के लिए सारे संसार में प्रसिद्ध था । भारत में जिसके आग-मन के साथ साहित्य और शिल्प के क्षेत्र में नये आयाम स्थापित हुए उसे इन सुधारवादी आन्दोलनों की आवश्यकता क्यों महसूस हुई? क्या ये आन्दोलन जन्म लेती राष्ट्रीय भावना के द्योतक थे ?

इस सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि, अंग्रेजों के भारत में आगमन के साथ-साथ उनका शासन से अधिकार धीरे-धीरे समाप्त होने लगा। इसलिए वे अंग्रेजों के विरुद्ध होते हुए उनसे दूर होते गये। यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि उन्होंने उनकी राजनीतिक सत्ता छीन जो ली थी।¹ अपनी अस्मिता की रक्षार्थ उनको अपने आप में सिमटना पड़ गया, इसलिए वे धीरे-धीरे बाहरी दुनिया से कट से गये अतः इस बीच होने वाली ज्ञान-विज्ञान की वृद्धि से उन्हें वंचित हो जाना पड़ा। परन्तु जब सन् 1857 के पश्चात धीरे-धीरे फिर घेरे से बाहर निकले तो समकालीन समाज से पीछे हो चुके थे। इस बीच विकसित विज्ञान और जनतन्त्र से उनका परिचय हुआ। उन्नति की दौड़ में आगे आने के लिए लोगों को अपनी जीवन पद्धति को विज्ञान सम्मत और जनतन्त्र सम्मत बनाने की आवश्यकता महसूस हुई, न कि इन तहरीकों का लक्ष्य एकता और एक जुटता की भावना विकसित करना था। यदि ऐसा होता तो इन आन्दोलनों को हिन्दू सुधार वादी आन्दोलनों की शुरुआत के पहले ही प्रारम्भ हो जाना था। स्वयं इनके कार्यक्रमों से भी मुस्लिम सुधारवादी भावना ही प्रकट होती है।

सन् 1875 में अलीगढ़ एंग्लो मोहमडन कालेज की स्थापना के साथ मुस्लिम सुधारवादी आन्दोलनों में सबसे प्रमुख तहरीक, अलीगढ़ तहरीक का जन्म हुआ। सर सैयद अहमद खाँ इसके अंगुआ थे। हाली, मौलाना नजीर अहमद, शिबली इत्यादि उनके सहयोगी थे। इसके कार्यक्रमों का ध्येय धार्मिक आस्था को बनाए रखते हुए पाश्चात्य शिक्षा-प्रचार-प्रसार था। इन लोगों ने मुसलमानों की विशिष्ट सामाजिक और सांस्कृतिक मान्यताओं को विज्ञान सम्मत बनाना चाहा। इस्लाम धर्म में विधवा

1- ए० आर० देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठ भूमि, पृ० 239

विवाह की अनुमति है परन्तु जो लोग हिन्दू धर्म छोड़कर मुसलमान हुए थे ऐसे कुछ लोगों में विधवा विवाह व्यवहारतः निषिद्ध था । इस व्यवहार को समाप्त करने में धार्मिक पुनरोत्थान की भावना अवश्य निहित थी । बहुविवाह वाद की धर्त्सना के अनन्तर भी आधुनिक उदारवादी संस्कृति और इस्लाम में ताल-मेल बैठाने की भावना निहित थी । इस प्रकार हम देखते हैं कि अपनी समग्रता में इस आन्दोलन का सम्बन्ध मुस्लिम सम्प्रदाय के धार्मिक एवं सामाजिक प्रश्नों तक सीमित था, न कि राष्ट्रीय प्रश्नों से सम्बन्धित ।

सन् 1889 में अहमदिया आन्दोलन स्थापित हुआ । इसके संस्थापक मिर्जागुलाम अहमद थे । उदारवादी सिद्धान्तों पर आधारित इस आन्दोलन ने अन्य धर्मों के साथ भ्रातृत्व में आस्था रखते हुए भारतीय मुसलमानों में पाश्चात्य उदारवादी विचारों का प्रचार-प्रसार करना चाहा । परन्तु यह आन्दोलन उदारवादी दृष्टिकोण रखते हुए भी पश्चिमी एशिया से प्रारम्भ बहाई आन्दोलन की तरह रहस्यवाद की छाया से बच नहीं सका ।¹ यद्यपि इसका ध्येय इस्लाम और आधुनिक ज्ञान-विज्ञान में सामन्जस्य स्थापित करना था, लेकिन इसने स्वयं को मुस्लिम पुनर्जागरण का ध्वजधारी कहा।²

कालक्रम में इन बड़े मुस्लिम सुधारवादी आन्दोलनों के साथ-साथ अन्य मुस्लिम धार्मिक, सामाजिक सुधार के आन्दोलन जन्म लेते रहे, जिनमें प्रमुख चार थे । दिल्ली के शाह अब्दुल अज़ीज़, बरेली के सैयद अहमद, जौनपुर के शेख करामत अली और फरीद पुर के हाजी शरीयतुल्ला द्वारा चलाए गये आन्दोलन । इनका उद्देश्य भी धार्मिक पुनरुज्जीवन ही था।³

1- ए0 आर0 देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ0 24।

2- वही, पृष्ठ 24।

3- वही, पृष्ठ 240

अतः उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि इन आन्दोलनों को सम्प्रदायगत सामाजिक सुधार आन्दोलन नाम से भले ही अभिहित कर लिया जाये किन्तु इसमें राष्ट्रीय नवजागरण की गन्ध नहीं मिलती । वस्तुतः इन आन्दोलनों के मूल में हिन्दू सुधारवाद की भावना ही निहित थी । उनकी अपनी धार्मिक पुनरोत्थान वादी पृथक-पृथक भूमिकाओं के अनन्तर एक सूत्रतता के संदर्भ में केवल चिन्तन पद्धतियों को रेखांकित किया जा सकता है । जो दोनों सम्प्रदायों के आन्दोलनों में लगभग एक सी थीं ।

अब प्रश्न उठता है कि उस राष्ट्रवादी चेतना के बीज भारत को कहाँ से मिले जिन्होंने भारतीय जनता में एक जुटता एवं सम्पूर्ण भारत को एक राष्ट्र समझने की भावना पैदा करके उन्हें अंग्रेजों के विरुद्ध एक जुट होने के लिए प्रेरित किया ?

1857 की क्रांति समाप्त हो जाने के बाद भारत एवं ब्रिटेन के सम्बन्धों का नया रूप सामने आया । संसद के नये ऐक्ट के अनुसार ब्रिटिश शासन ईस्ट इंडिया कम्पनी से हस्तांतरित होकर सीधा राजतन्त्र के हाथों में चला गया । जिन रियासतों या राज्यों पर उनका अधिकार नहीं हुआ था, उन पर अधिकार का प्रयास छोड़ उन्हें सुरक्षा इत्यादि का लालच देकर उनकी तरफ दोस्ती का हाथ बढ़ाया । इस प्रक्रिया में ब्रिटिश राज्य का जो रूप सामने आया वह भारतीय सामन्तवाद का दुश्मन न होकर मित्र सिद्ध हुआ ।¹ परिणाम स्वरूप जिन देशी रियासतों ने विद्रोह में हिस्सेदारी निभाई थी अब वो अंग्रेज समर्थक हो गयीं । अंग्रेजों ने अपने औद्योगिक स्वार्थ सिद्धि हेतु राज्यों की सामाजिक, धार्मिक एवं

1- ए० आर० देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ० 250

आर्थिक व्यवस्था में पूँजीवादी व्यवस्था के तत्वों के आधार पर परिवर्तन करना प्रारम्भ कर दिया । इसके अन्तर्गत मुक्त-व्यापार व्यवस्था और भाप की शक्ति ने पुराने उत्पादन सम्बन्धों और उस पर आधारित वर्गों को नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया । नये वर्ग तथा सम्बन्ध पैदा होने लगे । ब्रिटेन की औद्योगिक पूँजी ने भारत को लूटना प्रारम्भ कर दिया ।¹

ब्रिटिश प्रशासन ने इस प्रक्रिया में अपनी शक्ति का मन माना प्रयोग किया । उसका तत्कालीन भारतीय हस्तशिल्प पर सीधा प्रभाव पड़ा । यन्त्रों द्वारा निर्मित वस्तुओं के सामने हस्तशिल्पियों के उत्पादों की माँग कम होने लगी, उनके उत्पादनों पर कर भी बहुत अधिक लगा दिया गया । प्रशासन ने हस्तशिल्पियों को शिथिल तो कर दिया पर उनके पुनर्स्थापन के लिए कुछ भी नहीं किया गया । इसका परिणाम यह हुआ कि बेकार कारीगरों का वर्ग कृषि की तरफ उन्मुख होने से कृषि पर आश्रित लोगों की संख्या और बढ़ी । जब कि कृषि क्षेत्र का विस्तार उस पर बढ़ने वाले आश्रितों की अपेक्षित बहुत कम गति से हो रहा था ।

औद्योगिक विकास तो प्रारम्भ हुआ, पर उसका लाभ पूँजी-पतियों खास तौर पर विदेशी पूँजीपतियों को ही हुआ । सरकार भी यही चाहती थी । मजदूर वर्ग की स्थिति किसान और कारीगरों के समान ही विदेशियों की शोषण नीति के अन्तर्गत दिन-प्रतिदिन दयनीय होती जा रही थी । इस दशा का अनुमान उसी समय के एक जाँच आयोग द्वारा निकाले गये निष्कर्षों से आसानी से लगाया जा सकता है । आयोग के अनुसार,

1- अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, द मैक मिलन इंडिया लिमिटेड नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, सं० 1977, पृष्ठ 00।

"अधिकांश व्यक्तियों मजदूरों पर जितना कर्ज है वह उनकी तीन महीने की तनख्वाह से ज्यादा है और प्रायः काफी ज्यादा है ।"¹

इस प्रकार भारतीय समाज की धुरी कारीगर, किसान और मजदूर ब्रिटिश शासन काल में विकसित होते पूँजीवादी आर्थिक सम्बन्धों के आधार पर बने नये वर्ग के रूप में सामने आये । उन्हें जिन समस्याओं का सामना करना पड़ा वह किसी एक ग्राम या नगर की सीमा से परे राष्ट्रगत समस्याओं का रूप ग्रहण कर चुकी थीं ।

ब्रिटिश शासकों द्वारा सन् 1853 में स्थापित रेलवे ने भारत को सांस्कृतिक दृष्टि से राष्ट्र के रूप में मजबूत बनाने में बड़ी सहायता की, यद्यपि रेलवे की स्थापना का ध्येय भारत की भलाई के लिए नहीं था, परन्तु यात्रा की व्यापक सुविधाओं के कारण लोगों का जो सम्मिश्रण हुआ उसके बड़े गहरे नतीजे निकले। प्रारम्भ में तो प्रांतीयता की भावना बनी रही परन्तु कुछ समय बाद धीरे-धीरे उसका विनाश शुरू हो गया । विचारों की संकीर्णता समाप्त होने लगी जिसके कारण व्यापक स्तर राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रीय आधार पर आपसी सहयोग का मार्ग प्रशस्त हुआ ।²

भारत में अंग्रेजों की राजनीतिक एवं प्रशासनिक आवश्यकताओं के तहत ही आधुनिक शिक्षा की शुरुआत हुई ।³ परन्तु इसका एक परिणाम और प्राप्त हुआ जो कि भारतीयों के पक्ष गया । शिक्षित भारतीयों ने ही

1- रजनी पामदत्त, आज का भारत पृष्ठ 58

2- ए0 आर0 देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ0 112

3- वही, पृष्ठ 118

सबसे पहले पराधीनता का अपमान महसूस किया । उन्हें समसामयिक यूरोपीय राष्ट्रीय आन्दोलनों की जानकारी प्राप्त हुई । रूसों, पेन जान, स्टूअर्ट मिल इत्यादि चिन्तकों के अध्ययन ने भारतीय चिन्तन को आधुनिक बनाया । मेजिनी, गैरिवाल्डी इत्यादि पाश्चात राष्ट्रीय नायकों से भारतीयों का परिचय हुआ । इस सबका परिणाम यह हुआ कि आधुनिक, शक्तिशाली, समृद्ध और एक सूत्र बद्ध भारत की कल्पना भारतीय करने लगे ।

छापे खाने का प्रारम्भ भारतीय जन-जीवन के लिए एक क्रान्ति-कारी घटना थी । इसके द्वारा पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ, विचारों का आदान-प्रदान संपी हुई पुस्तकों और पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से जन साधारण के बीच भी संभव हो सका । बुद्ध जीवियों एवं समाज के उच्च वर्ग के अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से समस्याओं का वास्तविक रूप सर्वसाधारण तक पहुँचने लगा । जन तन्त्र तथा स्व-शासन जैसी विचार धारा से जन साधारण भी परिचित हुआ । पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही सरकारी नीतियों की लगातार आलोचना करते हुए जनता से राष्ट्रीय कल्याण के लिए एक जुट कार्य करने का आह्वान किया गया ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारतीय और ब्रिटिश हितों के बीच प्रारम्भ पारस्परिक विरोध के फलस्वरूप यहाँ का किसान, मज-दूर और कारीगर वर्ग सबसे अधिक प्रभावित हुआ । रेल, औद्योगिक क्रान्ति, पाश्चात्य शिक्षा, संचार माध्यम एवं साहित्य ने उन्हें इस विरोध का सहसास कराया । पहली बार लोगों को इन्हीं माध्यमों के सम्पर्क में आने के बाद पता चला कि ब्रिटिश साम्राज्य के शोषक हितों की पोषक

नीतियों के फल स्वरूप उत्पन्न व्यवधानों से संघर्ष किया जा सकता है । अतः 1857 के गदर के बाद जो छुट-पुट आन्दोलन प्रारम्भ हो गये थे धीरे-धीरे एक सूत्र बद्ध होने लगे । भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना का वर्ष 1885 आते-आते भारत का एक राष्ट्रीय स्वरूप स्पष्ट होने लगा ।

सन् 1876 में जनरल तथा वाय सराय का पद ग्रहण करने वाले लार्ड लिटन भारत आने से पहले प्रेस स्वतन्त्रता के हिमायती तथा सार्वजनिक प्रेमी व्यक्ति थे, पद ग्रहण के बाद घोर प्रतिक्रियावादी सिद्ध हुए । उनके शासन काल में ब्रिटिश व्यापारियों के हित में आयातित वस्त्रों से अधिकांश शुल्क हटा लेने से भारत के वस्त्र उद्योग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा । इसी वर्ष रानी विक्टोरिया को भारत की राजेश्वरी घोषित करके यह स्पष्ट कर दिया गया कि भारत ब्रिटेन का उपनिवेश है । घोषणा की प्रसन्नता में दिल्ली दरबार का आयोजन किया गया दूसरी तरफ देश जबरदस्त दुर्भिक्ष की चपेट में था । 1978 के आर्म्स एक्ट के द्वारा भारतीयों को निहत्था करके नपुंसक बनाने की प्रक्रिया में कार्य किया गया । 1978 में ही सिविल सर्विस भरती परीक्षा के नये नियमों की घोषणा के अन्तर्गत अधिकतम आयु 21 वर्ष के स्थान पर 19 वर्ष कर दी गयी । पहले ही परीक्षा का स्थान इंग्लैंड, माध्यम अंग्रेजी से भारतीयों के सिविल सर्विसेज में प्रवेश की सम्भावनाएँ कम थीं । लिटन के काल में होने वाले इन कार्यों ने अंग्रेजों के इरादों को स्पष्ट कर दिया । फलस्वरूप छुट-पुट आन्दोलनों और विरोधों के माध्यम से, 1857 के बाद धीरे-धीरे एक जुट होते भारतीयों ने अपनी प्रतिक्रिया को जाहिर करना प्रारम्भ कर दिया ।

स्थिति को विस्फोटक बनाने में 1883 में वाय सराय बने रिपन के इलवर्ट बिल ने चिंगारी का कार्य किया । लिटन के विरुद्ध होने वाले

प्रतिरोधों को कम करने की दिशा में रिपन ने कानून बनाया कि भारतीय अंग्रेजों के मुकदमें भी सुन सकते हैं। प्रतिक्रिया में अंग्रेज आग बबूला हो गये। यह बिल तत्कालीन विधि सदस्य इलवर्ट के नाम पर इलवर्ट बिल कहलाया। अंग्रेजों के गुस्से के कारण सरकार झुक गयी, दुबारा उनके हक में बिल में संशोधन कर दिया गया। इस प्रकरण से भारतीयों ने यह उपयोगी पाठ पढ़ा कि सरकार द्वारा अपनी मांगों को मनवाने के लिए जरूरी है कि वे भी अपने को राष्ट्रीय पैमाने पर संगठित करें तथा लगातार और एक जुट होकर आन्दोलन चलायें।¹

अधिकांश इतिहासकार स्पष्ट रूप से भारत में राष्ट्रवादी भावना की अभिव्यक्ति का प्रारम्भ सन् 1885 में स्थापित राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से मानते हैं, परन्तु इसकी स्थापना से पहले से ही अनेक संगठनों का जन्म हो चुका था जो कि कमो-बेश उन्हीं कार्य-क्रमों को लेकर प्रतिबद्ध थे जिन्हें कांग्रेस ने अपना उद्देश्य बनाया था। कांग्रेस की अपेक्षा उनका विस्तार क्षेत्र अवश्य सीमित था। सन् 1875 में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी के प्रयासों से 'इंडियन एसोसिएशन' की स्थापना हुई। यह पहला संगठन था जिसमें एक बड़े-बड़े भू-स्वामियों के विरुद्ध मध्य वर्ग के शिक्षित लोग एकत्र हुए।² इसके अपने राष्ट्रीय स्तर के कार्यक्रम थे, जिनका प्रमुख उद्देश्य राजनीतिक प्रश्नों पर देश में प्रबल जनमत तैयार करना तथा समूचे राष्ट्र में एक समान राजनीतिक कार्यक्रम के आधार पर भारतीय जनता को एक सूत्र बंध करना था। इस संस्था ने सिविल सर्विस की उम्र सीमा के सुधार के लिए जनमत तैयार करते हुए आर्म्स ऐक्ट, वनेक्युलर प्रेस ऐक्ट के विरुद्ध आवाजबुलंद करके जमींदारों से रैयतों की सुरक्षा के लिए भी कार्य-

1- विपिन चन्द्र: आधुनिक भारत, पृष्ठ 164

2- रजनी पामदत्त, आज का भारत, पृष्ठ 322

क्रम चलाया । 1866 में दादा भाई नौरोजी द्वारा स्थापित 'ईस्ट-इंडिया एसोसिएशन' ने भारत की गरीबी को रेखांकित करके ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत के आर्थिक शोषण को उद्घाटित किया । इसी क्रम में जस्टिस राना डे ने पूना में 'सार्वजनिक सभा' की स्थापना की । 'मद्रास महाजन सभा' की स्थापना 1881 में हुई । 'बंबई प्रेसिडेंसी एसोसिएशन' की स्थापना 1885 में हुई ।

इन सभी एसोसिएशनों का मुख्य ध्येय भारतीयों के विरुद्ध जाने वाले प्रशासनिक एवं विधायी कार्यों की आलोचना था । जबकि राष्ट्रीय कांग्रेस के जन्म का लक्ष्य राष्ट्रीय आन्दोलनों के विकास के तहत न होकर, साम्राज्यवादियों और उपनिवेशवादियों के हित को ध्यान में रखते हुए 'सुरक्षा कपाट' के रूप में हुआ ।

कांग्रेस के संस्थापकों में पहला नाम ए० ओ० ह्यूम का है । ह्यूम महोदय अंग्रेज थे तथा सन् 1882 तक उन्होंने एक कुशल प्रशासक के रूप में कार्य किया था । कांग्रेस के ठीक पहले के वर्ष 1857 के बाद के सबसे खतरनाक वर्ष सिद्ध हो रहे थे ।² सरकारी अधिकारी होने के कारण उन्हें पुलिस की गुप्त रिपोर्टों द्वारा ज्ञात हुआ कि, "देश में जन असंतोष बढ़ रहा है और अनेक भूमिगत षड्यन्त्रकारी तैयार होते चले जा रहे हैं ।"³ अतः ह्यूम ने 1885 के आरम्भ में तत्कालीन वाय सराय डफरिन से सम्पर्क स्थापित करके सारी स्थिति उनके सामने रखी । इसके पश्चात् दोनों लोगों की बात-चीत के फलस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की गयी ।⁴

1- विपिन चन्द्र, आधुनिक भारत, पृष्ठ 166

2- अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, पृष्ठ 121

3- रजनी पामदत्त, आज का भारत, पृष्ठ 322

4- वही, पृष्ठ 325

इसी सन्दर्भ में रजनी पाम दत्त की पुस्तक 'आज का भारत' में उद्धृतह्यूम की धारणा कांग्रेस की स्थापना के लक्ष्यों को एक दम साफ कर देती है ।" हमारी अपनी हरकतों से जो विशाल और बढ़ती हुयी शक्तियाँ यहाँ पैदा हो गयीं थीं, उनके समूचे जोश को बिना हमें कोई नुकसान पहुँचाए निकाल देने के लिए एक साधन की जरूरत थी और इस काम के लिए हमारे कांग्रेस आन्दोलन से ज्यादा कारगर कोई साधन नहीं बनाया जा सकता था ।" ¹

प्रारम्भ में कांग्रेस की स्थापना का नतीजा इफिरिन के हित में गया । कांग्रेस में सम्मिलित उदार वादियों ने भारत और ब्रिटेन के हितों को विरोधी के बजाय सहयोगी मानते हुए अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कांग्रेस को अनुकूल मार्ग के रूप में देखा इस लिए कांग्रेस के पहले अधिवेशन में साम्राज्य वादियों के प्रति पूरी भक्ति का परिचय दिया गया ।

कांग्रेस के अन्दर राष्ट्रवादी कही जाने वाली विचार धारा की कहानी तो कांग्रेस की स्थापना के बहुत बाद में प्रारम्भ हुई । इसके आरम्भिक चरण में ब्रिटेन के हितों को भारतीय हितों का सहयोगी मानने वाले उदारवादी भारतीयों ने सोचा कि इसके द्वारा एक तरफ तो वे जागरण और जन शिक्षा का विकास कर सकेंगे । दूसरी तरफ अंग्रेजों को यह समझा सकेंगे कि भारतीय जनता की माँगे न्याय संगत हैं और उनको मानना सरकार का कर्तव्य है । परन्तु 1885 से 1905 तक भारतीय सदस्यों की कांग्रेस के विभिन्न अधिवेशनों में प्रस्ताव द्वारा पारित माँगे पूरी नहीं हुई । ²

1- रजनी पामदत्त, आज का भारत, पृष्ठ 326

2- अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, पृष्ठ 142

इतना ही नहीं, कांग्रेस को राज भक्ति के बावजूद सरकार के क्रोध का भागी भी होना पड़ा ।¹ अतः ब्रिटिश शासन की सीमा में रहते हुए अपनी मांगों की पूर्ति के लक्ष्य के प्रति उदारवादियों का मोह भग्न स्वाभाविक था ।

उदारवादियों द्वारा अपनाई जाने वाली भाषणों और अर्जियों से आन्दोलनों की विधि असफल सिद्ध हुई । बीसवीं सदी के आरम्भ में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या, बंगाल में खास तौर पर तीव्रता से बढ़ने लगी । इसके मूल में भी ब्रिटिश सरकार के मंदिरम क्रमिक विकास का सिद्धान्त था । इन सब कारणों से विभिन्न राजनीतिक विचार धारा और कार्य नीतियों वाले दल कांग्रेस के अन्दर ही अन्दर विकसित होने लगे । तिलक, विपिन चन्द्र पाल, अरविन्द घोष और लाला लाजपत राय इत्यादि नये नेतृत्व का कांग्रेस में उदय हुआ । चूँकि इन लोगों का उदय पुरानी नीति के असफल होने के कारण एक नई धारा के जन्म की अनिवार्यता के कारण हुआ था इसलिए ये अपने को 'राष्ट्रवादी', 'कट्टर राष्ट्रवादी' तथा 'अखण्ड राष्ट्रवादी' की संज्ञा से अभिहित करते हुए कांग्रेस के उदारवादी प्रारम्भिक नेताओं को राष्ट्रीयता के अभाव वाले पश्चिमी रेंग-ढंग के पोषक के रूप में देखते-थे²

उदित होने वाले नये नेतृत्व का पुराने उदारवादी लोगों के प्रति विरोध प्रारम्भ करने में कदाचित् यह आकांक्षा निहित रही होगी कि साम्राज्यवाद के साथ समझौता करने की नीति छोड़ उसके विरुद्ध एक निर्णायक और दृढ़ प्रतिज्ञा संघर्ष का रास्ता अपनाया जाए । निश्चित रूप

1- रजनी पामदत्त, आज का भारत, पृष्ठ 333

2- वही, पृष्ठ 335

से यह कदम भारतीयों के लिए क्रांतिकारी एवं प्रगतिशील शक्तियों का प्रतिनिधित्व करता यदि वास्तव में ये लोग प्रारम्भिक उदारवादी नेताओं की सचमुच की प्रगतिशील बातों की आलोचना न करते । इन नेताओं ने समाज तथा राजनीति के किसी वैज्ञानिक सिद्धान्त से कटे होने के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन को पहले से ही प्रारम्भ हो चुके धार्मिक आन्दोलनों की आधार भूमि पर खड़ा करना चाहा । उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन के निर्माण के लिए कट्टर हिन्दूवाद का सहारा लिया और इस मान्यता को बल दिया कि आधुनिक 'पश्चिमी सभ्यता' की तुलना में प्राचीन हिन्दू या 'आर्य' सभ्यता आध्यात्मिक दृष्टि से श्रेष्ठ है ।¹ वस्तुतः उन्होंने भारत के सर्वाधिक प्रगतिशील आन्दोलन, राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए मुख्य आधार के रूप में पुरातन पंथी धर्म और धार्मिक अन्धविश्वास को सर्वाधिक महत्व दिया । परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलनों के विध्वंसकारी परिणाम प्राप्त हुए । जिसके प्रभाव को नष्ट करना आज भी मुश्किल कार्य सिद्ध हो रहा है ।

उग्र राष्ट्रवादी कहे जाने वाले इन नेताओं की कट्टर हिन्दूवाद की जबरदस्त प्रतिक्रिया वाली शक्तियों के साथ गठबन्धन के कारण राष्ट्रीय चेतना के वास्तविक विकास में अनिवार्य रूप से रुकावट आई और वह कमजोर हुई । इस प्रक्रिया का प्रारम्भ सन् 1890 में तिलक द्वारा 'एज आफ् कैंसेट बिबल' के विरोध से हुआ । इस बिबल में यह प्रावधान था कि लड़की की उम्र दस के बजाय बारह वर्ष हो जाने के बाद ही उसका पति उसके साथ सहवास कर सकता है । तिलक ने ही शिवाजी और गणपति के सम्मान में समारोह आयोजित कराके उन्हें कांग्रेस के कार्यक्रमों से जोड़ दिया।²

1- रजनी पामदत्त, आज का भारत, पृष्ठ 335

2- वही, पृष्ठ 336

परन्तु कांग्रेस से इन कार्यक्रमों का सम्बन्ध साफ नहीं था ।

राष्ट्रवाद को विध्वंसकारी बनाने में गोरक्षा आन्दोलन की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही है । हिन्दुअल्प के सिद्धान्त के अनुसार गाय की पवित्रता की बात करते हुए गाय के बध के विरोध में गोरक्षा आन्दोलन के कार्यकर्ताओं ने जोरदार आन्दोलन प्रारम्भ किया । यह आन्दोलन वास्तव में धार्मिक पुनरोत्थान की भावना से प्रेरित था, अन्यथा भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए गाय का होना एक वरदान है, मगर आर्थिक दृष्टि के अतिरिक्त उसका कोई और महत्व नहीं है ।¹ मुसलमान गाय खाते थे । गोरक्षा आन्दोलन ने उनकी भावनाओं को ठेस पहुँचाया । कांग्रेस के कुछ नेता भी गोरक्षा आन्दोलन में सम्मिलित थे तथा कांग्रेस के 1889 के अधिवेशन में गोरक्षा आन्दोलन की सभा के लिए अधिवेशन के पंडाल का प्रयोग किया गया ।² बंग-भंग के खिलाफ आन्दोलन की शुरुआत गंगा में डुबकी लगा कर की गयी ।³

इस प्रकार हम देखते हैं कि कांग्रेस का जन्म भारतीय राष्ट्रवाद से प्रेरित न होकर अंग्रेजी साम्राज्य के लिए 'सुरक्षा-कपाट' के रूप में हुआ । कांग्रेस अपने जन्म के बाद के प्रारम्भिक काल में ब्रिटिश सरकार की हितैषी के रूप में कार्य करती रही, यद्यपि उसमें सम्मिलित भारतीय उदारवादियों ने भारतीयों के हितों में दिलचस्पी ली परन्तु एक सीमा के अन्दर । अंग्रेजों द्वारा निर्मित सीमा का, छुट-पुट माँगों एवं आन्दोलनों को छोड़

1- प्रेम चन्द : विविध प्रसंग भाग-2 हंस प्रकाशन इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित सं० 1962, पृष्ठ 354

2- गार्गी चक्रवर्ती, गांधी : ए चैलेन्ज टू कम्युनैलिज्म, इस्टर्न बुक सेन्टर नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित सं० 1987, पृष्ठ 18

3- विपिन चन्द, भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष पृष्ठ 380

दिया जाये तो कहीं भी अतिक्रमण नहीं हुआ । जब 'राष्ट्रवादी' की संज्ञा से अभिहीत नेतृत्व कांग्रेस में उभरा तो इसमें राष्ट्रीयता का प्रचार-प्रसार करने के लिए हिन्दू मिथकों के प्रयोग, गोरक्षा आन्दोलन के माध्यम से हिन्दू पुनरोत्थान वादियों से सम्पर्क और अन्य हिन्दुत्व-वादी धारा वाले कार्यक्रमों में कांग्रेस के हिन्दू संस्कारों को स्पष्ट करते हुए मुस्लिम जनमत के एक बहुत बड़े हिस्से को राष्ट्रीय आन्दोलनों की मुख्यधारा से अलग कर दिया ।

सर सैयद अहमद खाँ पहले मुस्लिम नेता थे जिन्होंने कांग्रेस का खुलकर विरोध करने वाली संस्था 'यूनाइटेड पैट्रियारिक एसोसिएशन' की स्थापना की । सन् 1889 के इलाहाबाद कांग्रेस अधिवेशन को नाकाम बना देने के लिए उन्होंने सड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया । सर सैयद का विरोध इतना शक्तिशाली था कि बदरुद्दीन तैयब जी जैसे कांग्रेसी का विश्वास डिग गया । उन्हें भी लगने लगा कि "मुसलमानों का प्रबल बहुमत कांग्रेस के खिलाफ है और इसलिए 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' कहना अर्थहीन है ।" इसके बावजूद 1903 तक कांग्रेस में मुसलमान प्रतिनिधियों का प्रतिशत संतोषजनक रहा । सर सैयद द्वारा कांग्रेस के विरोध के सन्दर्भ में अनेक सवाल उठते हैं, उनमें जो सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है वह यह कि क्या सर सैयद अहमद साम्प्रदायिक थे ? इतिहासकार हिन्दू-मुस्लिम अलगाववाद की भूमिका में सर सैयद के कांग्रेस विरोध को महत्वपूर्ण कारण के रूप में उल्लेखित करते हैं ।

जबकि वास्तविकता ये भी है कि उनके द्वारा प्रारम्भ की गयी अलीगढ़ तहरीक का मुख्य ध्येय मुस्लिम समाज में पाश्चात्य शिक्षा को

उचित ठहराते हुए उसे आधुनिक विज्ञान और जनतन्त्र के समक्ष खड़ा करना था । मुसलमानों की उन्नति की पक्षधरता के साथ ही वे हिन्दुओं का विरोध नहीं करते थे । बल्कि हिन्दुओं को अपनी दूसरी आँख के रूप में देखते थे । इस बात की पुष्टि के लिए यह तथ्य काफी है कि, उनके द्वारा स्थापित ए० एम० ओ० कालेज में मुसलमानों के साथ समान रूप से हिन्दुओं का प्रवेश मिलता था । कालेज का प्रथम स्नातक ईश्वरी प्रसाद नाम का हिन्दू विद्यार्थी था। इसलिए सर सैयद और उनके सहयोगियों द्वारा कांग्रेस के विरोध के कारणों का विश्लेषण आवश्यक है ।

सन् 1857 की क्रांति में सर्वाधिक क्षति मुसलमानों को ही उठानी पड़ी । चूँकि बगावत करने वालों में मुसलमान ही आगे थे इसलिए अविश्वास के कारण समय-समय पर उन्हें अंग्रेजों के क्रोध का शिकार होना पड़ता था । दिन-प्रति दिन उनकी आर्थिक स्थिति भी खराब होती जा रही थी । बंगाल में तो नवाब के शासन काल में ही मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दू निवासी शिक्षित और अधिक सम्पन्न थे ।¹ भू-स्वामियों में भी अधिकांशतः हिन्दू ही थे ।

कार्नवालिस द्वारा प्रशासन-व्यवस्था में अमूल परिवर्तन के कारण राजस्व-व्यवस्था में मुसलमानों की भागेदारी लगभग समाप्त सी हो गयी । जब तक ब्रिटिश प्रशासन की भाषा उर्दू और फारसी थी मुसलमान अदालतों में जमे रहे । लेकिन उच्च न्यायालय में अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक बना दिये जाने के कारण वे अदालतों से भी हटाये जाने लगे । जिन नौकरियों में अंग्रेजी भाषा का ज्ञान आवश्यक था उसमें मुसलमान पिछड़ने लगा । इसके विपरीत हिन्दू वर्ग अंग्रेजी भाषा का ज्ञान प्राप्त करके अंग्रेजों के

1- अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, पृष्ठ 216

मुकाबले आने की स्थिति में था । मुसलमान वर्ग प्रतियोगिता में जमे रह पाने में कठिनाई का अनुभव करने लगा ।¹ सर सैयद मुसलमानों की स्थिति से अनभिज्ञ न रहे । उनके सामने यह स्थिति स्पष्ट हो गयी कि यदि मुसलमानों को अंग्रेजों का सहयोग न मिला तो अपनी श्रेष्ठ शिक्षा एवं अच्छी आर्थिक स्थिति से हिन्दू मुसलमानों को अभिभूत कर लेंगे । इसीलिए सर सैयद ने यह महसूस किया कि फिलहाल तो सरकार के सहयोग द्वारा ही मुसलमानों के आर्थिक अवसर बढ़ाये जा सकते हैं ।

मुसलमानों को कांग्रेस की राष्ट्रीय धारा से अलग करने में भाषायी विवाद की भी प्रमुख भूमिका रह-ही है । इससे जहाँ एक तरफ मुसलमानों के लिए आर्थिक अवसर समाप्त हो रहे थे, दूसरी तरफ इसके पीछे कार्य करने वाली मानसिकता भी मुसलमानों के सामने स्पष्ट हो गयी, जिसके मूल में कहीं-न-कहीं हिन्दू-राष्ट्रवाद की चेतना सक्रिय थी ।

19 वीं शताब्दी के पूर्वार्ध यानी 1837 में जब उर्दू को अदालती भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त हुई तो कोई आन्दोलन नहीं किया गया।³ लेकिन पन्द्रह बीस वर्ष पश्चात ही कुछ हिन्दी प्रेमियों द्वारा सरकार से यह अनुरोध किया जाने लगा कि अदालतों तथा दफ्तरों में फारसी लिपि के बजाय नागरी लिपि के प्रयोग को मान्यता दी जाय । यह माँग धीरे-धीरे नागरी-लिपि आन्दोलन के रूप में एक बड़े आन्दोलन के रूप में परिवर्तित हो गयी । इसी बीच देश के कुछ भागों में नागरी के प्रयोग का

1- अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, पृष्ठ 217

2- विपिन चन्द्र, भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, पृष्ठ 384

3- रामगोपाल, स्वतन्त्रता पूर्व हिन्दी संघर्ष का इतिहास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा प्रकाशित, सं० 1964 पृष्ठ 20

सरकार की तरफ से आदेश भी हो गया । आदेश के प्रति उदासीनता के अतिरिक्त विरोध की भावना दिखाई गयी । इस प्रतिक्रिया में हिन्दू-मुसलमान दोनों ही एक मत थे ।¹ जब प्रयोग कर्ता को कोई आपत्ति नहीं थी तो फिर उर्दू फारसी लिपि के बजाय नागरी थोपने के पीछे हिन्दू-पुनरोत्थान वाद की भावना अवश्य कार्य कर रही थी । इस बात की पुष्टि हिन्दी प्रचार-प्रसार की सक्रियता में धार्मिक आन्दोलनों की भागेदारी से भी होती है । केशव चन्द्र सेन, राजनारायण बोस, नवीन चन्द्र राय इत्यादि धार्मिक सुधारक हिन्दी पर बहुत अधिक बल दे रहे थे । पंजाब के असरकारी क्षेत्र में हिन्दी के प्रचार-प्रसार का मुख्य श्रेय आर्य समाज को ही जाता है ।² मालवीय जी के नेत्रित्व में धर्मसुधारकों साहित्यकारों के अतिरिक्त अनेक कांग्रेस से सम्बन्धित व्यक्ति भी इस आन्दोलन में सक्रिय थे ।

आन्दोलन दिन-प्रतिदिन तीव्र होता जा रहा था । कांग्रेस की उसमें सक्रियता से सर सैयद के अन्दर कांग्रेस द्वारा मुसलमानों के अहित की भावना और गहरी हो गयी । उन स्थितियों में जब कि सर सैयद मुस्लिम हिंदुओं के रक्षार्थ कांग्रेस से दूर हो रहे थे, भाषाई आन्दोलन से उभरे भारतीय राष्ट्रवाद के एकांगी चरित्र ने उन्हें कांग्रेस से और भी अधिक दूर कर दिया ।

सर सैयद और उनके सहयोगियों ने मुसलमानों की ऐतिहासिक भूमिका और राजनीतिक महत्व को मान्यता देने की मांग करते हुए कहा कि, "सरकारी नौकरियों, विधायिकाओं आदि में आरक्षण होना चाहिए ।

1- रामगोपाल, स्वतन्त्रता पूर्व हिन्दी संघर्ष का इतिहास, पृष्ठ 22

2- वही, पृष्ठ 57

विधान तथा परिषद में उनकी संख्या हिन्दुओं से कम न हो ।¹ सरकार विरोधी घोषित हो जाने की संभावना से मांग के अतिरिक्त मांग के समर्थन में उन्होंने कोई कार्य नहीं किया ।

तिलक, विपिन चन्द्र पाल और लाला लाजपत राय वगैरह के द्वारा कांग्रेस के अन्दर पैदा हुए धार्मिक एवं सामाजिक मामलों के पुनरोत्थान वादी दृष्टिकोण एवं मुसलमानों की कांग्रेस से बढ़ती दूरी में निहित साम्प्रदायिकता के बीज को पहचानने में अंग्रेजों को देर न लगी । और अपनी 'फूट डालो राज करोनीति' के तहत उत्पन्न होती साम्प्रदायिक भावना को विकास प्रदान करने में कोई भी अवसर हाथ से जाने नहीं दिया । शक्ति उन्हीं के हाथों में थी, उसका प्रयोग विघटन एवं एकता दोनों दिशाओं में किया जा सकता था । विघटन कारी शक्ति का, राष्ट्रीय आन्दोलन के विस्तार को रोकने, कमजोर करने तथा उदित होती राष्ट्रीय भावना को कुचलने में प्रयोग किया ।

अंग्रेज अपने हित में दोनों सम्प्रदाय की कमजोर नसों को पकड़ने लगे । इस सन्दर्भ में इतिहास की साम्प्रदायिक व्याख्या को रेखांकित किया जा सकता है । इतिहास को साम्प्रदायिक रंग देने की शुरुआत 19 वीं शताब्दी से हुई । ब्रिटिश इतिहास जेम्स बेकर ने भारतीय इतिहास के प्राचीन काल को हिन्दू युग और मध्यकाल को मुस्लिम युग की संज्ञा दी ।² जबकि वास्तविकता इसके विपरीत थी । मध्यकाल में जनता चाहे हिन्दू थी या मुसलमान, शोषित पीड़ित थी । मुसलमान के साथ हिन्दू शासक भी थे जो शोषण की प्रक्रिया में मुसलमानों से पीछे नहीं रहते

1- विपिन चन्द्र, भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, पृष्ठ 385

2- वही, पृष्ठ 382

थे । पुनरोत्थान वादी साहित्यकारों ने मुसलमान शासकों को आताताई तथा यवन इत्यादि के रूप में चित्रित करते हुए अंग्रेजों द्वारा विकृत रूप में उपस्थित की गयी भ्रान्तियों को बल प्रदान किया । मुसलमानों की इस पर प्रतिक्रिया स्वाभाविक थी । उन लोगों ने भी पश्चिमी एशिया की इस्लामी उपलब्धियों के स्वर्ण युग का राग अलापना शुरू किया और वहाँ के मिथकों, नायकों तथा सांस्कृतिक परम्पराओं के राग अलापने लगे ।¹

शासन ने हिन्दू, मुसलमानों और सिखों को लगातार अलग-अलग समुदायों का दर्जा देना प्रारम्भ कर दिया । साम्प्रदायिक व्यक्तियों, सम्प्रदायों तथा आन्दोलनों के प्रति असाधारण सहिष्णुता दिखाने लगे । साम्प्रदायिक माँगों को तुरन्त स्वीकार करके साम्प्रदायिक संगठनों को मजबूती प्रदान करने लगे । साम्प्रदायिक नेताओं को उनके तथा कथित सम्प्रदाय के प्रवक्ता के रूप में स्वीकार कर लिया जाने लगा ।² इस नीति के तहत अंग्रेजों ने भारतीय हिन्दू और मुसलमानों के आपसी मतभेदों को अपने हित में प्रयोग के लिए उपायों का अध्ययन भी प्रारम्भ कर दिया ।³

सर सैयद के नेत्रित्व में 1890 में मुसलमानों के लिए विशेष सुविधाओं और पदों का प्रस्ताव पेश किया गया । उस समय तो इस प्रस्ताव पर कोई ध्यान नहीं दिया गया परन्तु 1905 में बंग-भंग के विरोध से उत्पन्न राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रथम उत्ताल तरंग से मुकाबला करने के लिए अंग्रेजों ने इसी हथियार से काम लिया । 1906 में अंग्रेज सरकार द्वारा बनाया गया एक डेपुटेशन मुसलमानों के लिए विशेष सुविधाओं के सन्दर्भ में

1- विपिन चन्द्र, भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, पृष्ठ 382

2- रजनी पामदत्त, आज का भारत, , पृष्ठ 319

3- अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, पृष्ठ 221

लार्ड मिण्टो के पास गया । यद्यपि अधिकारिक तौर पर यह डेपुटेशन मुस्लिम समुदाय के प्रवक्ता के रूप में दिखाया गया। अंग्रेजों से उसके सम्बंध को छुपाये रखा गया । डेपुटेशन भेजने की व्यवस्था स्वयं सरकार की तरफ से की गयी थी, इस बात की पुष्टि सर सैयद अहमद खाँ के पक्के अनुयायी मौलाना मुहम्मद अली ने इंडियन नेशनल कांग्रेस के कोकनद अधिवेशन § 1923§ के अध्यक्षीय भाषण के दौरान की । उन्होंने बताया कि सरकारी हुकम से वह डेपुटेशन मिण्टो के पास गया ।¹

सन् 1906 में आल इंडिया मुस्लिम लीग की स्थापना हुई । वास्तव में यह उपर्युक्त डेपुटेशन की सांगठनिक परणति थी । मुस्लिम लीग के निर्माण में नवाब समीउल्ला ने पहल की । मोहम्मदन एनूकेशनल कांग्रेस के सिलसिले में बहुत से नेता दिसम्बर 1906 में ढाका में उपस्थित थे। उन्होंने इस उपस्थिति का फायदा उठाते हुए मुसलमानों के अलग राजनीतिक संगठन का प्रस्ताव रखा और ऐसे संगठन की योजना पेश की, "जिसका उद्देश्य ब्रिटिश सरकार का समर्थन करना और मुसलमानों के स्वार्थों तथा अधिकारों की रक्षा करना"² था । मुसलमानों को राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग करने की दिशा में मुस्लिम लीग के निर्माण के पीछे अंग्रेजों की भूमिका को लार्ड मिण्टो से मिलने गये एक अधिकारी की प्रतिक्रिया जो कि मुस्लिम लीग के निर्माण को लेकर व्यक्त की गयी थी, आसानी से समझा जा सकता है । उसने कहा, "महामहिम की सेवा में मुझे यह कहना है कि आज एक बहुत बड़ी घटना हो गयी । राजनीतिक निपुणता का आज एक ऐसा कमाल हो गया है जो आने वाले कई वर्षों तक भारत को और भारत की राजनीति को प्रभावित करेगा । दर असल,

1- अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, पृष्ठ 223

2- वही, पृष्ठ 225

आज जो काम हुआ है उससे 6 करोड़ 20 लाख लोगों को §मुसलमानों§ देश द्रोही विपक्ष §कांग्रेस§ से मिलने से रोक दिया गया है ।"¹

कांग्रेस के समान मुस्लिम लीग का निर्माण ब्रिटिश हितों की पोषक नीति के अन्तर्गत हुआ, परन्तु कांग्रेस के समान शीघ्र ही मुस्लिम लीग में भी साम्राज्यवादी भावना असर दिखाने लगी । कांग्रेस की अपेक्षा पहले ही, अपने निर्माण के सात वर्ष बाद अर्थात् 1913 में उसने 'ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर स्वराज्य' प्राप्त करने का अपना लक्ष्य भी घोषित कर दिया तथा लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में अग्रसर होने के लिए 1916 में कांग्रेस और लीग के बीच लखनऊ में एक संधि पर हस्ताक्षर हुआ । इस संधि में अलग-अलग चुनाव क्षेत्रों की व्यवस्था को स्वीकारते हुए यह भी घोषणा की गयी थी कि दोनों संगठनों का समान लक्ष्य भारत को डोमिनियन स्टेट का दर्जा दिलाना है और उसकी प्राप्ति के लिए दोनों संगठन मिलकर सहयोग करेंगे ।²

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान मुस्लिम नेताओं और मुस्लिम जनता के साथ-साथ स्वराज्य की प्राप्ति में अपने जुझारूपन का परिचय भी दिया। सड़कों पर हिन्दू मुस्लिम एकता के जोश भरे नारे भी सुनाई देने लगे। अली बन्धुओं और हुसैन मदानी जैसे नेताओं ने सैनिकों को राज द्रोह करने की शिक्षा दी, जिसके कारण उन्हें छ वर्ष के कारावास की सजा हो गयी । 1919 की एक सरकारी रिपोर्ट को मजबूर होकर यह स्वीकार करना पड़ा कि, "हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच अभूत पूर्व भाई चारा कायम हो गया है ... दोनों सम्प्रदायों के बीच मैत्री के असाधारण दृश्य दिखायी

1- रजनी पामदत्त, आज का भारत, पृष्ठ 470

2- वही, पृष्ठ 470

देने लगे हैं ।"¹

मुसलमानों की राजनीतिक चेतना लगातार बढ़ती ही जा रही थी । जिन्ना, जिन्हें भारत विभाजन का मुख्य कार्यकर्ता मानते हुए भारत में मुस्लिम साम्प्रदायिक तत्वों का प्रवर्धन सिद्ध किया गया, वे जब 1906 में इंग्लैण्ड से बैरिस्टर बनकर लौटे थे धर्म निर्पेक्ष, उदार और राष्ट्रवादी तथा दादा भाई के प्रबल समर्थक थे । उन्होंने अपने राजनीतिक जीवन की शुरुआत कांग्रेस में सम्मिलित होकर दादा भाई नौरोजी के सचिव के रूप में कार्य करके किया । पृथक मतदाता मंडल की व्यवस्था के तहत केन्द्रीय विधान परिषद के मुसलमान सदस्य के रूप में उन्हें उनकी इच्छा के विरुद्ध चुना गया ।²

ब्रिटिश सरकार ने मुसलमानों को राष्ट्रीय आन्दोलन की धारा से अलग करने के लिए पृथक चुनाव क्षेत्रों और प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गयी, यह वास्तविकता लार्ड मार्ले द्वारा लार्ड मिण्टो के नाम दिये गये खत से भी स्पष्ट हो जाती है । "मैं आप को याद दिलाना चाहता हूँ कि अपने एक भाषण में विशेषाधिकार की बात करके 'मुसलमानों' खरगोशों को दौड़ने के लिए बढ़ावा दिया है ।"³ बढ़ावा देने की इस प्रक्रिया के अन्तर्गत आगा खान के नेत्रित्व वाले शिष्ट मंडल की पृथक प्रतिनिधित्व की मांग लार्ड मिण्टो द्वारा स्वीकारे जाने के एक वर्ष के अन्दर ही इसका खोखला पन सामने आ गया । 1910 के संयुक्त प्रान्त के जिला बोर्डों के चुनाव में, जो कि पुरानी चुनाव प्रणाली पर आधारित था, मुस्लिम

1- रजनी पामदत्त, आज का भारत, पृष्ठ 47।

2- विपिन चन्द्र, भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, 466

3- रजनी पामदत्त, आज का भारत, पृष्ठ 460

प्रतिनिधियों की संख्या उनकी आबादी के अनुपात से अधिक थी ।¹

मुसलमानों को विशेषाधिकार प्रदान करके उनका समर्थन प्राप्त करने तथा बहुमत का ध्यान अपनी तरफ से हटाने के लिए चली, अंग्रेजों की इस चाल को जिन्ना एवं दूसरे राष्ट्रवादी मुस्लिम समझ गये जिन्ना ने इसका विरोध करते हुए कहा कि, "किसी भी वर्ग या समाज के लिए कोई भी संरक्षण नहीं होना चाहिए ।"² सन् 1913 में मुस्लिम लीग में शामिल हो जाने के बावजूद जिन्ना पृथक मतदाता मंडल का विरोध करते रहे क्योंकि उनके अनुसार इससे देश के दो स्पष्ट खेमों में बँट जाने का खतरा है ।³

अब प्रश्न यह उठता है कि जिन्ना के नेत्रित्व में जिस मुस्लिम लीग ने सन् 1916 में कांग्रेस के साथ एकता और स्वराज्य के लक्ष्यों को लेकर समझौता किया । दोनों की एकता का झण्डा विश्व युद्ध के दौरान बुलंद हुआ, वही मुस्लिम लीग, जिन्ना तथा मुसलमानों का एक बहुत बड़ा वर्ग कांग्रेस से अलग होकर राष्ट्रीय धारा से कट क्यों गया ? इतना ही नहीं, आजादी प्राप्त होने तक स्थिति इतनी विस्फोटक हो गयी कि उन्हें नये राष्ट्र की माँग के लिए बाध्य होना पड़ा ।

कांग्रेस में उग्रराष्ट्रवादी नेत्रित्व की भूमिका के सम्बंध में इसी अध्याय में पहले के पृष्ठों पर चर्चा की जा चुकी है । अंग्रेजों ने उसका इस्तेमाल करते हुए पृथक चुनावों इत्यादि के द्वारा उग्रराष्ट्रवाद को और भड़काया, यद्यपि बाद में मामला पटरी पकड़ता दिखा परन्तु कांग्रेस ने एक बार फिर पहले वाली गलती को दुहराया । इस बार हिन्दू वादी तत्त्वों

1- रजनी पामदत्त, आज का भारत, पृष्ठ 467

2- विपिन चन्द्र, भारत का स्वाधीनता संघर्ष, पृष्ठ 401

ने और भी अधिक सहयोग दिया । मुस्लिम लीग के प्रारम्भिक दिनों की लक्षित संकीर्णता वास्तव में आगा ख़ाँ या कुछ अन्य मुस्लिम जमींदारों और उच्चवर्गीय मुसलमानों के निजी हितों पर आधारित थी ।¹ उस समय इसे आम जनता का कोई ठोस और व्यापक समर्थन भी नहीं था, न ही उसे इस प्रकार के किसी संगठन इत्यादि की आवश्यकता ही थी । यदि ऐसा होता तो, मुस्लिम जनता का व्यापक समर्थन खाने वाले सर सैयद अहमद के काल में ही मुस्लिमलीग जैसी किसी संगठन का निर्माण हो जाना चाहिए था । परन्तु सर सैयद के जीवन काल तक एक सशक्त नेता की उपस्थिति में मुसलमानों ने लीग जैसी किसी राजनीतिक संस्था के निर्माण की बात नहीं की ।

प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात मुस्लिम लीग और कांग्रेस के सम्बन्धों में उत्पन्न दरार तथा कांग्रेस से अलग होते मुस्लिम समुदाय के सन्दर्भ में प्रारम्भ खिलाफत आन्दोलन से हुआ । अली बन्धुओं के नेत्रित्व में मुसलमानों और कांग्रेस के मध्य खिलाफत के प्रश्न को लेकर संयुक्त मोर्चा स्थापित हो गया । इस संयुक्त मोर्चे का नेत्रित्व गाँधी जी के हाथों में था । इस मोर्चे ने तुर्की के खलीफा से सम्बन्धित ब्रिटेन के द्वारा किये जाने वाले अन्याय के विरुद्ध संघर्ष का फैसला किया । ब्रिटिश माल के बहिष्कार के साथ-साथ असहयोग का कार्यक्रम बनाया । अली बन्धुओं के अतिरिक्त मौलाना अबुल कलाम आजाद, डॉ० अन्सारी, हकीम अजमल ख़ाँ इत्यादि मुस्लिम नेता इसके प्रमुख नेता बनकर उभरे। खिलाफतआन्दोलन के नेताओं ने ही सबसे पहले यह माँग उठायी कि स्वराज्य की व्याख्या पूर्ण स्वाधीनता के रूप में की

1- रजनी पामदत्त, आज का भारत, पृष्ठ 470

जाये । इस सम्बन्ध में प्रथम व्यक्ति के रूप में हसरत मोहानी थे, जिन्होंने सन् 1921 में अहमदाबाद में यह मांग की । इस आन्दोलन के द्वारा मुस्लिम समुदाय का एक विशाल वर्ग राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्य धारा में सम्मिलित हो रहा था कि एक बार फिर कांग्रेस की तुल-मुल नीतियाँ सामने आ गयीं ।

खिलाफत कमेटी और जमीयत-उल-उलमा के संयुक्त अधिवेशन में पारित प्रस्ताव में मुसलमानों और भारत दोनों के हित में कांग्रेस के लक्ष्य 'स्वराज्य' के स्थान पर पूर्ण स्वाधीनता की बात की गयी । कांग्रेस ने इस प्रस्ताव का विरोध किया गांधी जी ने कहा कि, "इस मांग से मुझे बेहद अफसोस हुआ है क्योंकि इससे गैर जिम्मेदारी की भावना प्रकट होती है।"। निश्चित रूप से उनका यह वक्तव्य मुस्लिम समुदाय की भावना को ठेस पहुँचाने वाला था । खिलाफत आन्दोलन के अन्तर्गत किया जाने वाला असहयोग वापस ले लिए जाने पर दोनों गुटों की फूट और गहरी हो गयी।

दूसरी तरफ खिलाफत को मुस्लिम धर्म के प्रश्न के साथ जोड़ कर हिन्दू धर्म का एक बहुत बड़ा वर्ग पहले से ही इसका विरोध कर रहा था । उसने खिलाफत के महत्व को समझा ही नहीं, न ही समझने का प्रयत्न किया और सदा उसे सदेह की दृष्टि से देखता रहा।² गांधी जी के राजनीतिक तुल-मुल पन के साथ उनकी धार्मिक मान्यताओं ने भी व्यापक छाल-मेल पैदा किया । एक तरफ तो वे आम हित की बात करते थे जिसमें हिन्दू मुस्लिम सिख इसाई सभी आते थे । दूसरी तरफ हिन्दू वाद एवं हिन्दू धार्मिक धारणाओं को अपने उपदेशों और वक्तव्यों के माध्यम से प्रचारित-

1- रजनी पामदत्त, आज का भारत, पृष्ठ 472

2- प्रेम चन्द, विविध प्रसंग भाग-2, पृष्ठ 351

प्रसारित करते रहे । 1920-22 के मध्य, जबकि हिन्दू और मुसलमान एकता की उत्कृष्ट भावना के साथ असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित थे, जिसका नेतृत्व गांधी जी के हाथों में था और उन पर यह जिम्मेदारी थी कि वह जो कुछ भी करें वह एक संयुक्त धर्म के नेता को शोभा देने योग्य हो, उस समय सार्वजनिक रूप से उन्होंने यह घोषणा की कि मैं एक सनातनी हूँ ।¹ इस प्रकार गांधी जी हमेशा अपने वक्तव्यों के माध्यम से एक हिन्दू के रूप में सामने आये । कांग्रेस के हिन्दुत्व के सम्बंध में प्रेमचन्द का मत भी ध्यान देने योग्य है, "असहयोग में हमारा विश्वास है मगर हम कहने से बाज नहीं आ सकते कि कांग्रेस ने मुसलमानों को अपना सहायक बनाने की ओर उतनी कोशिश नहीं की जितनी करती चाहिये थी । वह हिन्दुओं की सहायता प्राप्त करके ही संतुष्ट रह गयी ।"² इन सब कारणों से कांग्रेस और खिलाफत कमिटी के माध्यम से उत्पन्न हिन्दू-मुसलमानों के मध्य कायम होती एकता समाप्त होने लगी ।

इसके बाद के वर्ष भारत के दोनों प्रमुख समुदायों की एकता की दृष्टि से निराशा के वर्ष थे । कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच बढ़ती दूरी के साथ हिन्दू-मुसलमानों के मध्य बैर का मार्ग चौड़ा होता गया । यद्यपि अब तक जिन्ना मुस्लिम लीग के प्रखर प्रवक्ता के रूप में मान्यता प्राप्त कर चुके थे, परन्तु इसके बावजूद अपने राजनीतिक जीवन में वे हिन्दू और मुसलमानों के किसी भी राजनीतिक भेदभाव को जल्दी-से-जल्दी दूर हो जाने की आकांक्षा लिए हुए मुसलमान बाद में पहले भारतीय होने की भावना से सम्पृक्तरहे । सन् 1927-28 में कांग्रेस द्वारा घोषित साइमन

1- रजनी पाम दत्त, आज का भारत, पृष्ठ 476

2- प्रेम चन्द, विविध प्रसंग भाग-2, पृष्ठ 364

कमीशन के बहिष्कार में सम्मिलित होने से इन्कार करने के बावजूद बाहर से ही बहिष्कार का समर्थन किया ।¹ इसके विपरीत कांग्रेस और उससे सम्बन्धित प्रमुख नेता हिन्दू धर्म के संगठन एवं प्रतिनिधि होने के रूप में भी सामने आये ।² इन परिस्थितियों में मुसलमान ही नहीं अपितु साधारण जनता का एक बहुत बड़ा वर्ग कांग्रेस को एक हिन्दू आन्दोलन के रूप में समझने लगा ।

कांग्रेस और हिन्दू आन्दोलन के अन्तर सम्बन्धों की पुष्टि 'हिन्दू महा सभा' के निर्माण से और भी अधिक हो गयी । गांधी जी द्वारा असहयोग आन्दोलन वापस लेने के पहले जहाँ मिल-जुल कर स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष हो रहा था, अब भयानक रूप से साम्प्रदायिक दंगे प्रारम्भ हो गये । सन् 1925 में अखिल भारतीय पैमाने पर मुस्लिम लीग के विरोध में हिन्दू महा सभा की स्थापना हुई । इसके अध्यक्ष लाला लाजपत राय बने । ये वही लाला लाज पत राय थे जिनका नाम तिलक और विपिन चन्द्र पाल के नामों के साथ चलता था । ये वही लाला लाजपत राय थे जिन्हें राष्ट्रवादी क्रान्तिकारी होने के संदेह के कारण ब्रिटिश शासकों ने विश्व युद्ध के दौरान अमेरिका से नहीं आने दिया । किन्तु वही लाला लाजपत राय हिन्दू महा सभा जैसे साम्प्रदायिक संगठन के संगठन कर्ता बने । हिन्दू महा सभा के लोग जब चाहते कांग्रेस में आ जाते । इस सम्बन्ध में साक्ष्य के लिए प्रेम चन्द के वक्तव्यों को देखा जा सकता है, " हिन्दू सभा के सैकड़ों उपासक इस आन्दोलन को कमजोर देख कर कांग्रेस में आ मिले और वहाँ भी अपना जहरीला असर फैला रहे हैं ।"³

1- विपिन चन्द्र, भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, पृष्ठ 401

2- रजनी पाम दत्त, आज का भारत, पृष्ठ 470

3- प्रेमचन्द, विविध प्रसंग भाग-2, पृष्ठ 365

मुसलमानों को हिन्दुओं का सबसे बड़ा दुश्मन घोषित करते हुए महा सभा ने अपना जो लक्ष्य घोषित किया उसमें प्रमुख था, हिन्दुओं को संघबद्ध करना, पहले मुसलमान बने हिन्दुओं को फिर से हिन्दू बनाना, धार्मिक त्यौहार मनाना इत्यादि ।¹ महा सभा के इन लक्ष्यों से मुस्लिम समाज पर होने वाली प्रतिक्रिया का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

मालाबार के मोपला विद्रोह को हिन्दू विरोधी मानते हुए मदन मोहन मालवीय के नेत्रित्व में प्रतिक्रिया स्वरूप नव मुस्लिम को शुद्ध करके उन्हें फिर से हिन्दू बनाने के कार्य ने मुस्लिम भावनाओं को इतना उग्र कर दिया कि प्रतिक्रिया स्वरूप 'तजीब' और 'तब्लीग' नाम के संगठन अस्तित्व में आ गये ।

शुद्धि आन्दोलन के सन्दर्भ में मालवीय इत्यादि महा सभाइयों का तर्क था कि कांग्रेस एक राजनीतिक संस्था है । इस लिए वह हिन्दू धर्म के सामाजिक सांस्कृतिक एवं राजनीति से असम्बन्धित मामलों में नहीं पड़ सकती, मालाबार के मोपला किसानों के विद्रोह से जो दंगा भड़का उससे हिन्दू के क्षति की पूर्ति और मुसलमानों के आक्रमण से बचने के लिए हिन्दुओं को संगठित करने एवं शुद्धि की आवश्यकता है । इन सब कार्यक्रमों से समग्रता में अलग रहने के बावजूद कांग्रेस ने व्यक्तिगत रूप से इसमें कोई कमी नहीं उठा रखा ।² मालवीय एवं उनके सहयोगियों के द्वारा दिये गये तर्क में भी कांग्रेस और महा सभाइयों के सम्बन्धों की गन्ध महसूस होती है ।

जहाँ तक मालाबार के मोपला किसानों के आन्दोलन का प्रश्न है , वास्तव में ये आन्दोलन साम्राज्यवाद और सामंतवाद के विरुद्ध सशस्त्र

1- अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, पृष्ठ 350

2- प्रेम चन्द, विविध प्रसंग भाग-2, पृष्ठ 352

संग्राम था, जिसने बुर्जुआ राष्ट्रीय नेताओं की दुर्बलता के कारण अंत में साम्प्रदायिक रूप धारण कर लिया ।¹ जिसका परिणाम भारत की राष्ट्रीय एकता के लिए अत्यंत घातक सिद्ध हुआ, हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच की दूरी बढ़ती गयी ।

सन् 1937 के चुनावों में कांग्रेस की नीतियों ने हिन्दू मुस्लिम सम्बन्धों की रही-सही कमी को भी पूरा कर दिया । आम चुनाव के पहले कांग्रेसियों ने सोचा कि उसे पूर्ण बहुमत प्राप्त कर लेना मुश्किल है । इसलिए उसने लीग से चुनावी समझौता कर लिया, लेकिन आशा के विपरीत उसे जबरदस्त सफलता प्राप्त हुई । फलस्वरूप कांग्रेसियों के मन में बेईमानी समा गयी । समझौते को भंग करके अकेले ही कांग्रेस ने 6 प्रान्तों में अपनी सरकार बनायी । इसके पीछे उनका यह तर्क था कि लोगों ने जनता ने कांग्रेस को ही सरकार बनाने को कहा है । 1937 की जनवरी में नेहरू द्वारा जिन्ना को लिखे गये खत में कहा गया कि, "अन्तिम विप्लव में भारत में आज केवल दो ही शक्तियाँ हैं, ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारतीय राष्ट्रवाद का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था कांग्रेस ।मुस्लिम लीग मुसलमानों के एक गुट का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें निःसंदेह काफी महत्वपूर्ण लोग हैं लेकिन मुस्लिम लीग का काम केवल उच्च मध्य वर्ग के लोगों तक सीमित है और उसका मुस्लिम जनता से कोई सम्पर्क नहीं है । मुसलमानों के निम्न मध्य वर्ग से उसका बहुत कम सम्पर्क है ।"²

इस स्थिति में मुस्लिम लीग के नेताओं का भड़क उठना तो आसान था ही, उसके द्वारा आम मुस्लिम जनता के मस्तिष्क में यह बैठाना कि

1- अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, पृष्ठ 418

2- रजनी पाम दत्त, आज का भारत, पृष्ठ 473

कांग्रेस मुसलमानों को सत्ता में भागीदार नहीं बनाना चाहती, मुश्किल कार्य न था । यह तर्क अधिकांश लीगी चुनाव से पहले भी दिया करते थे। परन्तु उनका आधार व्यापक नहीं था । कांग्रेस के द्वारा चुनावी वादे को तोड़ने के कार्य ने मुस्लिम लीग के तर्क को पुष्ट किया । इसी के साथ मुस्लिम लीग की व्यापक पैठ आम जनता में प्रारम्भ हो गयी । इस्लाम खतरे में है का नारा प्रारम्भ हो गया । सन् 1927 में जिस लीग की सदस्य 1330 थी 1938 में उसकी सदस्य संख्या लाखों में पहुँच गयी ।¹ जिन्ना मुस्लिम लीग के प्रमुख नेता के रूप उभरे ।

1937 के आम चुनावों में कांग्रेस द्वारा पदग्रहण के लिए अपनायी गयी तिकड़म बाजी, धोखे की नीति और पहले से ही साम्प्रदायिक शक्तियों के साथ किये जाने वाले सहयोग के कारण मुसलमान कांग्रेस और हिन्दुओं से स्वयं को अलग समझने लगे । सन् 1940 में जब कांग्रेस का राम गढ़ अधिवेशन हो रहा था ठीक उसी समय मुस्लिम लीग का लाहौर अधिवेशन सम्पन्न हुआ । इस अधिवेशन में देश के बँटवारे से सम्बन्धित प्रस्ताव पास किया गया जिसे लाहौर प्रस्ताव कहा गया, परन्तु इस प्रस्ताव में पाकिस्तान शब्द का कहीं उल्लेख नहीं था ।²

इससे भी पहले कैम्ब्रिज के कुछ भारतीय विद्यार्थियों ने चौधरी रहमत अली के नेत्रित्व में हिन्दुस्तान के हिन्दू मुसलमानों को अलग-अलग मान कर यहाँ बांग्लस्तान, उस्मानिस्तान म्यनिस्तान आदि अलग मुस्लिम बहुल प्रदेशों का गठन करके उसके नाम को पाकिस्तान रखने के लिए 'पाकिस्तान नेशनल मूवमेन्ट की स्थापना की । लेकिन मुस्लिम लीग ने इस योजना को काल्पनिक, छात्रा का सपना और अव्यावहारिक कह कर

1- रजनी पाम दत्त, आज का भारत, पृष्ठ 473

2- अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, पृष्ठ 693

ठुकरा दिया ।¹ 1937 में लीग के वार्षिक अधिवेशन में इसका लक्ष्य स्वीकार करते हुए कहा गया कि मुस्लिम लीग, "भारत में पूर्ण स्वतंत्र जनतांत्रिक राज्यों के एक संघ के रूप में पूर्ण स्वाधीनता की स्थापना के लिए कार्य करेगी ।"²

अपने इस प्रस्ताव के बाद लीग वस्तुतः कांग्रेस के बहुत करीब आ गयी थी । दोनों के बीच सन् 1916 के लखनऊ पैक्ट जैसे समझौते की स्थितियाँ उत्पन्न हो गयीं । फिर भी समझौता न हो सका । लीग ने तीन साल बाद ही मुसलमानों के लिए अलग राज्य की मांग प्रारम्भ कर दी जिसका अन्त विभाज के रूप हुआ ।

इस सम्बन्ध में 1937 के चुनावों के अतिरिक्त जो सबसे महत्वपूर्ण कारण है वह यह कि राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारम्भिक वर्षों की सक्रिय पुनरोत्थान वादी मानसिकता अब भी किसी न किसी रूप में उपस्थित थी। अनेक गांधीवादी नेताओं का चरित्र राष्ट्रीय से अधिक हिन्दू वादी के रूप में मुखर था । 1937 के चुनाव के बाद जब बंबई में सरकार बनाने का प्रश्न आया तो सरदार वल्लभ भाई पटेल इत्यादि ने वहाँ के जाने-माने पारसी नेता नारी मैन के बजाय मुख्य मन्त्री के रूप में एक हिन्दू वादी नेता जी. बी. खेर को चुना । कांग्रेस के दक्षिण पंथीनेताओं ने संयुक्त प्रान्त में भी व्यापक घाल मेल किया ।³ कांग्रेसी नेत्रित्व के इन आचरणों के कारण लीगियों के अतिरिक्त आम मुस्लिम जनता कांग्रेस से तीव्रता के साथ दूर होने लगी । कुछ प्रगतिशील नवयुवक मुसलमान जो कांग्रेस के हिमायती थे कांग्रेस से दूर होकर लीग की तरफ झुकने लगे ।

1- रजनी पाम दत्त, आज का भारत, पृष्ठ 478

2- अधोध्या सिंह भारत का मुक्ति संग्राम, पृष्ठ 693

3- वही, पृष्ठ 699

इसका कारण यह था कि अब लीग में मुस्लिम नौ जवानों का एक प्रगति-शील वर्ग बनने लगा था, जो पुराने प्रतिक्रियावादी लीगियों के विपरीत जन तान्त्रिक कार्यक्रमों को लेकर आगे बढ़ रहा था ।¹

सन् 1920 के दशक की साम्प्रदायिकता, जिसके राजनीतिक मंच पर मालवीय और लाजपत राय इत्यादि थे, अब उसका नेतृत्व बी० डी० सावरकर के हाथों में चला आया । उनके नेत्रित्व में 'हिन्दू महा सभा' हिन्दुओं को चेतावनी दे रही थी कि मुसलमान हिन्दुओं को पदमर्दित करके उन्हें उनके ही देश में गुलाम बनाना चाहते हैं ।² उग्रवादी विचार धारा को तैयार करने में महा सभा की सहायता का कार्य आर० एस० एस० से जुड़े गोबलकर ने सन् 1939 में अपनी पुस्तक 'वी' हम्म से प्रारम्भ किया । मुसलमानों के साथ अन्य धार्मिक अल्पसंख्यकों को गोबलकर की सलाह थी कि, "हिन्दुस्तान के गैर हिन्दू लोगों को या तो हिन्दू संस्कृति और भाषा अपनानी होगी, हिन्दू धर्म का सम्मान करना होगा और हिन्दू जाति की श्रेष्ठता स्वीकार करनी होगी या फिर हिन्दू राष्ट्र के आधीन होकर रहना होगा और विशेषाधिकारों की तो बात ही दर-किनार नागरिकों के सामान्य अधिकारों से वंचित रहना होगा ।"³ बहुसंख्यक वर्ग के ये विचार अल्प संख्यकों को भय क्रान्त करने के लिए सहायक सिद्ध हुए । इसका पूरा प्रयोग ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने किया ।⁴ दोनों सम्प्रदायों के मध्य भयंकर मार काट प्रारम्भ हो गयी । सन् 1940 का वर्ष आते-आते भयंकर

1- रजनी पाम दत्त, आज का भारत, पृष्ठ 474

2- विपिन चन्द्र, भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, पृष्ठ 405

3- वही, पृष्ठ 405

4- अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, पृष्ठ 699

साम्प्रदायिक दंगों की बाढ़ आ गयी । स्थितियाँ ऐसी हो गयीं कि अब किए जाने वाले सारे प्रयत्न बेकर सिद्ध हो रहे थे । इन स्थितियों से निपटने का केवल एक ही रास्ता नजर आ रहा था, वह था भारत विभाजन ।

विभाजन के साथ जनता की चिर प्रतीक्षित अभिलाषा पूरी हुई। 14 अगस्त सन् 1947 की आधी रात का घन्टा भारत के लिए स्वतन्त्रता का संदेश लाया । स्वतन्त्रता मिली तो, मगर हजारों निर्दोष व्यक्तियों के रक्त से लथ-पथ लाखों लोगों के घरबार छोड़ने के दर्द में डूबी हुई करोड़ों दिलों पर आनेवाले समय के लिए अपने अवषाद भरे प्रभाव को अंकित कर गयी।

:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:

द्वितीय अध्याय

:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:

विभाजन की त्रासदी

=====

15 अगस्त सन् 1947 को भारतवासियों ने हार्डल्लास के साथ अपना प्रथम स्वतन्त्रता दिवस मनाया । पीढ़ी-दर-पीढ़ी बलिदान देने वाले देश-भक्तों का रक्त रंग लाया, लेकिन इस अवसर पर मिली प्रसन्नता जिसे अपार और असीमित होना चाहिए था दर्द और भय के अथाह सागर में डूबती उतर रही थी । मुल्क के दो टुकड़े हो चुके थे । ब्रिटिश शासकों ने 'फूट डालो राज करो' की अपनी नीति के अन्तर्गत भारत की सांस्कृतिक एकता की कमजोर नसों को पहचान कर अपने अधिकारों के सम्बल से ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी कि भारत में साम्प्रदायिक सौहार्द का स्थिर रह पाना लगभग असम्भव सा हो गया । यद्यपि भारत में राष्ट्रवादी वैचारिकता के विकास के क्रम में प्रारम्भ से ही हिन्दू पुनरोत्थानवादी शक्तियों और प्रतिक्रिया स्वरूप मुसलमान शक्तियों के मध्य समय-समय पर उत्पन्न मतभेदों के फलस्वरूप टकराव की स्थितियाँ उत्पन्न होती रहीं, परन्तु द्विराष्ट्र के सिद्धान्त पर आधारित स्वतन्त्र भारत की कल्पना न तो हिन्दुओं ने की न मुसलमानों ने ही । 1937 तक कांग्रेस के समानान्तर मुसलमानों की रहनुमायी करने वाली पार्टियों के रूप में उभर चुकी मुस्लिम लीग और कांग्रेस के विचारों एवं कार्य पद्धतियों में भिन्नता के बावजूद सैद्धान्तिक रूप से दोनों दल भारत की स्वतन्त्रता को लेकर एक मत थे ।

पाकिस्तान की माँग को लीग ने पहली बार सन् 1940 के लाहौर अधिवेशन में उठाया । उल्लेखनीय तथ्य यह है कि लीग की इस माँग में स्पष्ट रूप से पाकिस्तान शब्द का उल्लेख नहीं किया गया । लेकिन हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता की पिछले सत्तर वर्षों से हो रही बढ़ोत्तरी ने वह रूप ग्रहण कर लिया था जिसका एक मात्र विकल्प था विभाजन । 10 सितम्बर 1945

को एक भेट वार्ता में जिन्ना ने सन् 1940 के अधिवेशन के प्रस्ताव को साफ करते हुए 'पाकिस्तान' शब्द का स्पष्ट उल्लेख किया। अन्त में अप्रैल 1946 में पाकिस्तान की व्याख्या करते हुए कहा गया कि "उत्तर पूर्व में बंगाल और असम का इलाका तथा उत्तर पश्चिम में पंजाब, सरहदी सूबासिंध और बलूचिस्तान के इलाके मुसलमानों के बहुमत से भरे हैं जिन्हें हम 'पाकिस्तान' कह सकते हैं। इन्हें मिलाकर एक स्वतन्त्र संप्रभुता संपन्न राज्य बना दिया जाए।"¹ संप्रभुता संपन्न राष्ट्र पाकिस्तान के अस्तित्व ने बर्बर खूनी दंगों को जन्म देते हुए उदीयमान स्वतन्त्र राष्ट्र के ताने-बाने को छिन्न-भिन्न कर दिया।

भारत विभाजन से उत्पन्न भयावह एवं त्रासद स्थितियों के विवेचन-विश्लेषण से पहले दो महत्व पूर्ण प्रश्नों पर भी संक्षिप्त चर्चा कर लेना आवश्यक है क्योंकि अपरोक्ष रूप से ये प्रश्न भी विभाजन की त्रासदी से सम्बन्धित हैं। पहला ये कि अंग्रेजों ने भारत छोड़ा क्यों? दूसरा यह कि विभाजन को कांग्रेस ने स्वीकृत क्यों किया, जब की वह द्विराष्ट्र के सिद्धान्त के प्रकाश में आ जाने के पहले और बाद में भी किसी अलगाववाद के विरुद्ध थी।

ब्रिटेन चाहता था कि भारतीय अपना शासन खुद चलाएँ और आजादी उसकी इसी इच्छा का नतीजा थी। विभाजन सदियों पुराने हिन्दू-मुस्लिम बैमनस्य का दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम था।² साम्राज्यवादियों का सत्ता हस्तांतरण और विभाजन के सम्बन्ध में सीधा सादा जवाब था। वास्तव में ये जवाब बचकाना एवं अतर्क पूर्ण है। जिस साम्प्रदायिकता के विकास ने द्विराष्ट्र के सिद्धान्त को जन्म दिया वह 1857 से पहले कहीं भी

1- रजनी पाम दत्त: आधुनिक भारत, पृष्ठ 48

2- विपिन चन्द्र: भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, पृष्ठ 44

नजर नहीं आती । साम्प्रदायिकता का विकास अपने वास्तविक रूप में कांग्रेस के जन्म के प्रारम्भ में सुचारु रूप से हुआ । यद्यपि पहले विभिन्न धार्मिक सुधार वादी आन्दोलनों के विकास क्रम में इसकी जड़ों ने अपने लिए जमीन अवश्य तैयार कर ली थी । कांग्रेस कुछ हद तक राष्ट्रवादी चेतना का प्रचार-प्रसार करके उदात्तमान राष्ट्र को ब्रिटिश शासकों से मुक्त कराने में सफल रही लेकिन वह अपने समानान्तर विकसित होने वाली साम्प्रदायिक शक्तियों के दबाव से उबरने में सफल न हो सकी । कांग्रेस के अन्दर ही जन्म लेने वाली समय-समय पर हिन्दू पुनरोत्थान वादी शक्तियों के कारण राष्ट्रीय धारा का एक बहुत बड़े वर्ग मुस्लिम वर्ग को राष्ट्र के साथ जोड़ न सकी । "राष्ट्रीय आन्दोलन का यही अन्तिमविरोध यानी सफलता भी, विफलता भी-एक दूसरे अन्तिमविरोध में प्रकट होती है - यानी आजादी भी विभाजन भी ।" ।

1940 में मुस्लिम लीग द्वारा द्विराष्ट्र के सिद्धांत के सिद्धांत को अपरोक्ष रूप से प्रस्तावित कर देने के बाद 1942 का वर्ष आते-आते देश की जनता के विभिन्न वर्गों सहित गांधी जी को इस बात का एहसास हो चुका था कि स्वतन्त्रता का प्रश्न तब तक असम्भव है जब तक कि हम साम्प्रदायिक प्रश्नों को सुलझा नहीं पायेंगे ।² ये साम्प्रदायिक प्रश्नों की भयानकता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि उनकी स्थिति असमंजस भरी हो गयी थीं और अन्तिमविरोध इस हद तक बढ़ गये कि कभी तो वे विभाजन को आत्म हत्या का रास्ता मानते हुए भी उसे स्वीकार करके जिन्ना को 'कायदे आजम' कहते, कभी विभाजन को टालने के लिए सम्पूर्ण सत्ता

1- विपीन चन्द्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृष्ठ 448

2- आर० सी० मजूमदार, स्ट्रगल फार फ्रीडम, भारतीय विद्या भवन द्वारा प्रकाशित भाग-11, सं० 1969, पृष्ठ 695

मुस्लिम लीग को सौंपने को तैयार हो जाते ।¹ विभाजन की मानसिकता तैयार करने में ये स्थिति प्रमुख कारणों में से एक साबित हुई । जब गांधी जैसा लोकीप्रिय व्यक्तित्व विभाजन के प्रश्न को लेकर किसी निश्चित मत पर नहीं था तो जन साधारण की इस विषय में अनिश्चयात्मक स्थिति स्वाभाविक थी ।

सन् 42 में द्वितीय महा युद्ध भी अपने चरम पर था ब्रिटिश शासक युद्ध में तो जमें थे पर भारतीय मोर्चे पर उखड़ने लगे । राज्य के प्रभाव क्षेत्र से राष्ट्रीय आन्दोलनों का प्रभाव भारी सिद्ध हो रहा था । स्वतन्त्रता के लिए उत्सर्ग की भावना ने लोगों की प्रशासनिक बेड़ियों को तोड़ चुकी थी । फौज और नौकर शाही ने खुले आम राजनीतिक कार्यक्रमों में हिस्सा लेना प्रारम्भ कर दिया । राष्ट्रीय आन्दोलनों ने इतनी तीव्रता पकड़ ली थी कि ब्रिटिश दमनात्मक कार्यवाहियों के विरोध में इतना जन-क्रोश फैल गया कि जनता अपने गुस्से में उन सब चीजों को नष्ट कर देना चाहती थी जिसका सम्बन्ध ब्रिटिश साम्राज्यवादियों से था ।² दमन के बावजूद ब्रिटिश अधिकारियों का मनोबल गिरने लगा । अंग्रेज परस्त भारतीय अधिकारियों की बदलती वफादारी ने ब्रिटिश शासन की स्थिति बिना नाविक के नाव जैसी कर दी थी ।

दूल्ही नौकर शाही की रही-सही कमी को यूरोपीय आई० सी० एस० की अनुपलब्धता ने पूरी कर दिया । कैम्ब्रिज और आक्सफोर्ड के

1- आर० सी० मजूमदार, स्ट्रगल फार फ्रीडम, स० 1969, पृष्ठ 695 -

विभाजन टालने के लिए उन्होंने रखे प्रस्ताव में कहा "कि उन्हें §जिन्ना§ को ऐसा अनुभव हो रहा है कि मात्र हिन्दुओं के हाथ में ही सत्ता रहने वाली है तो फिर इस देश की सम्पूर्ण सत्ता लीग को सौंप दी जाए ।

2- अयोध्या सिंह : भारत का मुक्ति संग्राम, पृष्ठ 721

शिक्षितों की मान्यता थी कि भारत के 'शिशु मानसिकता वाले लोगों' पर शासन करना इंग्लैण्ड की नियति है, किन्तु अब उनकी जगह ग्राम्पर एवं पालीटेक्निक के छात्र लेते जा रहे थे जिनका ध्येय राज करने से अधिक जीविकोपार्जन था । 1945 में महा युद्ध की समाप्ति के बाद यह समस्या और गहरी हो गयी । लोग धक भी चुके थे । सत्ता असहायता महसूस करने लगी थी ।

कांग्रेस की सरकार के 1937 में बन जाने के बाद अधिकारियों की असहायता और बढ़ गयी । जिन लोगों को पहले लाठियों से पीटा जाता था अब उन्हीं का हुक्म मानना पड़ रहा था । जब कांग्रेस के नेताओं के जोशीले भाषण हवा में गूँजते तो खड़े-ताकते ही रह सकते थे ।

1942 की दमनात्मक कार्यवाहियों के बन्द होने के बाद जब नेता जेलों से बाहर आये तो उनके द्वारा जाँच की माँग पर सरकार की खामोशी ने अधिकारियों के मनोबल को और गिरा दिया । शासन का ढाँचा तो बरकरार रहा लेकिन 1946 के चुनावों के बाद यह भ्रम जरूर सरकार के मन में बैठ गया कि यदि 1942 की भाँति एक बार फिर आन्दोलन प्रारम्भ हुआ तो नौकर शाही और फौज भरोसे मंद नहीं साबित हो सकती हैं और प्रान्तीय सरकारें इस आन्दोलन को रोकने के बजाय उसमें मदद करेंगी ।¹

वस्तुतः युद्ध के अन्त तक सरकार एवं नौकर शाही दोनों के समक्ष भारत के भविष्य का चित्र स्पष्ट हो चुका था । उसके सामने एक ही विकल्प था समझौता करके सम्मान पूर्वक भारत छोड़ दिया जाये अन्यथा सख्ती के द्वारा शासन की गाड़ी को घसीटा जाये । विकल्प न तो सत्ता

1- विपीन चन्द्र: भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष: पृष्ठ 45।

रुढ़ लेबर पार्टी को मंजूर था न ही ब्रिटिश तथा अमेरिकी जनमत को स्वेच्छाचारी शासन के लिए ब्रिटिश फौज भी अनुपलब्ध थी । इस स्थिति में कुछ दिनों के लिए ब्रिटिश शासन घसीटने के बाद क्या होता ? तब उसे अपमान सहकर भारत छोड़ना पड़ता तथा स्वतन्त्र भारत और उसके सम्बन्धों में कड़वाहट भी आ जाती । "ब्रिटिश सरकार के सामने यह स्पष्ट था कि भविष्य के अच्छे सम्बन्धों के लिए और सम्भावित खानादोलनों की आशंका समाप्त करने के लिए समझौते से बचा नहीं जा सकता है।"।

1942 के आन्दोलनों में महत्वपूर्ण कांग्रेसी नेताओं की गिरफ्तारी के बाद लीग के लिए मैदान साफ हो चुका था । अंग्रेजों को खुश करने के ध्येय से उन लोगों ने कांग्रेस के विरुद्ध बयान देना प्रारम्भ कर दिया । साथ-साथ पाकिस्तान का नारा गूँजने लगा । इसी बीच चैम्बर्स आफ कामर्स की आर्थिक सभा के भाषण में जब बायसराय लिन लिथगो ने भारत की भौगोलिक एकता पर बल देते हुए बँटवारे को अनुचित बताया तो लीग के नेता जल भुन गये । पाकिस्तान की माँग और तेज हो गयी । 'भारत छोड़ो' के वजन पर 'बाँटो और भागो' का नारा दिया गया । लीग ने भारत को एक बनाए रखने वाले संविधान को लागू करने के खिलाफ सारे हिन्दुस्तान के मुसलमानों को संगठित करने के लिए एक संग्राम कमेटी बनायी । विभाजन के प्रश्न को लेकर लीग की शक्ति दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही थी ।

अब तक कांग्रेस गाँधी जी के भावुकतापूर्ण निर्णय एवं एकाध छुट-पुट नेताओं के अतिरिक्त विभाजन की माँग को ठुकराती ही चली आ रही थी, लेकिन लीग की बढ़ती हुई शक्ति, पाकिस्तान की माँग को जन साधारण का समर्थन एवं उग्र होती साम्प्रदायिकता तथा विश्व के राजनीतिक उलट फेर

को दृष्टि में रखते हुए एक महत्वपूर्ण कांग्रेसी नेता सी० राजगोपाला चारी ने पाकिस्तान की माँग को मंजूरी का समर्थन देना प्रारम्भ कर दिया । इतिहास कारों ने राजगोपाला चारी द्वारा माँग के समर्थन के जिन कारणों की चर्चा की है उसमें दो महत्वपूर्ण हैं ।

1- माँग स्वीकृत हो जाने के कारण हिन्दू मुस्लिम संघर्ष समाप्त हो जायेगा । हिन्दू-मुसलमान एक जुट होकर अंग्रेजों से संघर्ष करने की स्थिति में आ जायेंगे ।

2- दक्षिण भारत के कांग्रेसी लगातार विभाजन का समर्थन करते आ रहे थे । व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा के अतिरिक्त उनके समर्थन के मूल में भारतीय राजनीति में उत्तर भारत के वर्चस्व को कम करना था । क्योंकि विभाजन उत्तरी क्षेत्र का होता जिससे वहाँ की राजनीतिक शक्ति का कम होना स्वाभाविक था ।

गोपाला चारी द्वारा प्रस्तुत विभाजन का प्रस्ताव मद्रास प्रान्तीय कांग्रेस समिति में पास हो जाने के बावजूद अखिल भारतीय कांग्रेस समिति प्रयाग में ना मंजूर कर दिया गया । बाद में विभाजन हुआ, परन्तु क्रूरतम भयानक त्रासद भरी स्थितियों के जन्मदाता के रूप में । काश यदि उसी समय विभाजन का प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता तो सम्भवतः विभाजनोपरान्त उत्पन्न होने वाली स्थितियों से बचा सकता था ।

1944 में नियुक्त वायसराय लार्ड वेवेल ने मुस्लिम लीग की पाकिस्तान योजना को ठुकराते हुए अखण्डता पर बल दिया । परन्तु ये विरोध वास्तव में ब्रिटिश सरकार की अपनी सत्ता को कुछ दिन और बनाए रखने की चाल थी । वे एक तरफ तो पाकिस्तान का विरोध करके हिन्दू सहानु-

भीत अपने पक्ष में करना चाह रहे थे, दूसरी तरफ उनका कहना था कि स्वतन्त्रता साम्प्रदायिक प्रश्नों के समाधान के बाद ही संभव है ।

कांग्रेस भी साम्प्रदायिकता की समस्या को लेकर अनिश्चय की स्थिति में थी । अतः जिस कांग्रेस ने 1937 में लीग के साथ समझौते को तस्वीकार रि दिया था उसने 1944 में गांधी जी के नेतृत्व में जिन्ना के सामने एक योजना रखी, जिसमें यह प्रस्ताव रखा कि जनमत संग्रह के आधार पर हिन्दू एवं मुस्लिम बहुल इलाकों को विभाजिक करके दोनों हिस्सों पर समान केन्द्रीय सत्ता की बात समाविष्ट की जाय । इस प्रस्ताव को 'लाहौर प्रस्ताव' की संज्ञा प्रदान की गयी । जिन्ना ने इस प्रस्ताव को नामंजूर करते हुए इसे मूल प्रस्ताव की छाया मात्र बताया ।¹ मगर जिन्ना के नेतृत्व में लीग स्वतन्त्र सम्प्रभु राष्ट्र के लिए कटिबद्ध थी ।

1945 के शिमला परिषद में तत्कालीन गवर्नर वेवेल बढ़ती हुई हिन्दू-मुस्लिम दूरी को कम करने का दिखावा एक बार फिर किया । अवरोधों के बाद प्रारम्भ परिषद पाँच बैठकों के बाद समाप्त हो गयी । बैठक असफल हो चुकी थी । असफलता के सम्बन्ध में पत्रकार दुर्गादास जो कि स्वयं वहाँ मौजूद थे की रिपोर्ट से शिमला परिषद में अंग्रेजों द्वारा खेली गयी चाल को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है । "जब जिन्ना मीटिंग के बाहर लिफ्ट की तरफ बढ़े तभी मैं उनके साथ हो लिया और मैंने पूछा कि वेवेल योजना को क्यों स्वीकार नहीं कर रहे हैं ? तब उनका उत्तर सुनकर मैं अवाक रह गया । उन्होंने कहा, वेवेल योजना स्वीकार करने की मूर्खता मैं क्यों करूँगा जब कि मुझे पाकिस्तान देने का वादा किया जा रहा है ।"²

1- आर० सी० मजूमदार : स्ट्रगल फार फ्रीडम, पृष्ठ 712 - 13

2- दुर्गा दास, इंडिया फ्रॉम कॉर्न टू नेहरू एण्ड आफ्टर, कॉलिन्स एस० टी० जोन्स प्लेस लंदन द्वारा प्रकाशित, सं० 1969, पृष्ठ 216

शिमला परिषद की असफलता के सम्बन्ध में दुर्गादास ने आगे यह भी लिखा है कि "परिषद के पहले ही दिन वास सराय के प्रस्ताव पर जिन्ना अपने निर्णय को घोषित करने वाले थे । परन्तु इस घोषणा के कुछ मिनटों पूर्व ही उन्हें शिमला में ब्रिटिश नागरी अधिकारियों के खास विभाग से एक एक संदेश प्राप्त हुआ यह संदेश सीधे लंदन से प्राप्त हुआ था, संदेश था कि जिन्ना अगर बात चीत से अलग हो जाए तो उन्हें पाकिस्तान दे दिया जाएगा ।"।

शिमला परिषद जहाँ भारत के लिए एक तरफ दुर्भाग्य पूर्ण स्थिति थी, क्योंकि साम्प्रदायिक भ्रंशकता इतनी अधिक बढ़ चुकी थी कि उसे सुलझाने के लिए भारतीयों को दुश्मन की मध्यस्थता स्वीकार करनी पड़ी। वहीं दूसरी तरफ उसकी असफलता बाद के दिनों के लिए निणयिक सिद्ध हुई। लीग का मनोबल बढ़ा । इसी दौरान इंग्लैण्ड की राजनीति में लेबर पार्टी के प्रवेश ने भारतीय राजनीति को युगान्तकारी मोड़ प्रदान किया । लेबर पार्टी ने सत्ता में आने के बाद अपने वायदे के अनुसार भारत में भारत की अपनी सरकार बनाने हेतु 1945 में नये चुनावों की घोषणा की ।

चुनाव परिणामों में यह देखा गया कि मतदाता या तो कांग्रेस के साथ हैं या मुस्लिम लीग के यानी बुर्जुआवर्ग की उन पार्टियों के साथ जिन्होंने स्वाधीनता की मांग की थी ।² बंगाल प्रान्त की सदन में कुल स्थानों की संख्या 250 थी जिसमें 119 मुस्लिम स्थानों में से 113 स्थान लीग को मिले, कांग्रेस के स्थानों की संख्या 87 थी । कांग्रेस ने इस चुनाव में फिर एक बार 1937 वाली गलती को दोहराया । एच० एम० सुहरा वर्दी

1- दुर्गा दास : इंडिया फ्राम कर्जन टू नेहरू एण्ड आफ्टर, पृष्ठ 216

2- अयोध्या सिंह : भारत का मुक्ति संग्राम पृष्ठ 768

ने बंगाल में मन्त्रि मंडल बनाने के लिए कांग्रेस के सामने असहयोग का प्रस्ताव रखा, लेकिन उसने इन्कार कर दिया। चुनाव का यह परिणाम भारत को विभाजित करने की ब्रिटिश योजना का आधार बना।¹ कैबिनेट मिशन ने आधार को शक्ति प्रदान किया।

"हम अल्प संख्यकों के अधिकारों के बारे में काफी सचेत हैं और अल्प संख्यकों को भय से मुक्त वातावरण में रहने की सुविधा मिलनी चाहिए। दूसरी तरफ हम किसी अल्प संख्यक वर्ग को इस बात की अनुभूति नहीं दे सकते कि वह बहु संख्यक वर्ग के विकास के खिलाफ अपने विशेषाधिकार का इस्तेमाल कर सके।"² प्रधान मन्त्री स्टली ने यह घोषणा करते हुए हिन्दू-मुस्लिम समस्या सुलझाने के लिए अपने तीन कैबिनेट स्तर के मन्त्रियों को भेजा। इस तरह के अन्तर्विरोध भरे बयान के कारण लीग का तिलमिलाना स्वाभाविक था। जिन्ना ने कैबिनेट मिशन का विरोध करते हुए घोषणा कर दी कि "मुस्लिम अल्पसंख्यक नहीं वे तो एक राष्ट्र हैं। उन्होंने यह भी धमकी दी कि अगर कोई संगठन संविधान बनाने का प्रयत्न करेगा, तो लीग उससे सहयोग नहीं करेगी।"³ लीग की प्रतिक्रिया ने अंग्रेज सरकार को कांग्रेस और लीग के आपसी मतभेदों को और अधिक प्रचारित व प्रसारित करने का अवसर प्रदान कर दिया।

इन सब विरोधों अन्तर्विरोधों के बीच कैबिनेट मिशन ने अपना कार्य जारी रखा। पाकिस्तान के मसले को सुलझाने के लिए जिन्ना के सामने जो विकल्प रखा उसमें कहा गया कि स्वतन्त्र पाकिस्तान में कोई ऐसा जिला नहीं रखा जाएगा जिसमें मुस्लिम अल्प संख्यक हों तथा जिन्ना?

1- अयोध्या सिंह : भारत का मुक्ति संग्राम : पृष्ठ 768

2- रजनी पाम दत्त : आज का भारत, पृष्ठ 594

3- सूर्यनारायण रणसुभे : देश विभाजन और हिन्दी कथा साहित्य,

संघन कानपुर द्वारा प्रकाशित, सं० 1987, पृष्ठ 46

द्वारा प्रस्तावित पाकिस्तान योजना, जिसमें कि विदेश और सुरक्षा नीति संघीय भारत के संरक्षण में होगी अन्य स्वतन्त्र लीग ने इस विकल्प को पहले स्वीकार किया विदेश नीति एवं सुरक्षा के साथ-साथ यातायात को भी शामिल कर लेने पर कांग्रेस ने भी कैबिनेट मिशन की योजना को स्वीकृति दे दी । प्रान्तों को तीन अलग-अलग श्रेणियों में विभाजित करके उन प्रान्तों की विधान सभाओं में मुस्लिम एवं सिख प्रतिनिधियों की संख्या निश्चित कर दी गयी ।

अभी मामला तय ही नहीं हुआ था कि अन्तिम समय में पीडित जवाहर लाल नेहरू ने 1937 की गलती एक बार फिर दुहरा दी । पत्रकार परिषद में पूछे गये सवाल के उत्तर में उन्होंने कहा कि "एक बार सत्ता में आने के बाद कांग्रेस मिशन योजना को मनोनुकूल रूप प्रदान करने के लिए अपनी समस्त शक्ति केन्द्र में लगा देगी ।" जवाहर लाल ने मिशन योजना के अन्तर्गत निश्चित की गयी प्रान्त सम्बन्धी योजना के सम्बन्ध में संभावना व्यक्त करते हुए कहा कि "भविष्य में यह भी संभावना है कि इस प्रकार के विभाजन होंगे ही नहीं ।" ²

जवाहर लाल के इन वक्तव्यों ने जिन्ना के लिए एक बार फिर अनगाव वाद की तरफ जाने वाले रास्ते को खोल दिया । उन्होंने इन अदूर दीर्घता पूर्ण वक्तव्यों की कड़ी आलोचना करते हुए योजना को अपनी दी गयी मंजूरी रद्द कर दी और पहली बार पाकिस्तान की माँग के प्रति कटि बद्ध होते हुए 16 अगस्त सन् 1946 को प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस के रूप में घोषित किया जो कि भारत के इतिहास के क्रूरतम दिनों में एक सिद्ध हुआ । कलकत्ते की गलियाँ खून से लाल हो गयीं । हजारों निर्दोष लोगों की जाने गयीं । कलकत्ता से प्रारम्भ होकर नोआ खाली होते हुए बिहार

1- लियोनार्ड मोसले : लास्ट डे^{ऑफ़} ब्रिटिश राज, विडेन फील्ड एण्ड निक्सन लन्दन द्वारा प्रकाशित, सं० 1961, पृष्ठ 78

2- आर० सी० मजूमदार : स्ट्रगल फार फ्रीडम, पृष्ठ 744

में साम्प्रदायिक दंगों की बाढ़ आ गयी ।

मिशन ने भारत से जाने से पहले सारी जिम्मेदारी वायसराय को सौंप दी । प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस के दंगों पर काबू पाने में असमर्थ पाकर वायसराय को अन्तरिम सरकार की घोषणा करनी पड़ी । कांग्रेस के मंत्रियों के नाम की घोषणा कर दी गयी । देश की जनता अपने प्यारे नेता नेहरू को स्वाधीन भारत का प्रधान मन्त्री देखना चाहती थी, लेकिन वह बने ब्रिटिश सम्राट द्वारा नियुक्त अन्तरिम सरकार के एक मन्त्री । समझौता वादी सुधार नीति की यह परिणति थी ।¹

लीग ने भी सरकार में शामिल होने का फैसला करते हुए लियाकत अली, आई० आई० चुन्दरीगर, अब्दुल रब निशतार और जोगेन्द्र नाथ मंडल का नाम पेश किया । लीग का प्रस्ताव सहयोग की दिशा में एक और कदम था, परन्तु सरकार बनने के पश्चात एकता के लिए बंधी आशा शीघ्र ही टूटती प्रतीत हुई जब लीगी और कांग्रेसी एक दूसरे की जड़ों को काटने में लग गये । उस समय चन्द मुस्लिम उद्भोग पतियों को छोड़ अधिकांश उद्भोग पति हिन्दू थे । उनका कांग्रेस से घनिष्ट संबंध था । मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि लियाकत अली जो कि बित्त मन्त्री थे, उनके द्वारा प्रस्तुत बजट ने कांग्रेस के लिए सिर दर्द पैदा कर दिया क्योंकि उनके बजट की सीधी मार उद्भोग पतियों पर थी । इस स्थिति में कांग्रेस और लीग के मध्य आपसी सहयोग असम्भव हो गया । मन्त्रि मंडल ने एक वक्तव्य जारी करते हुए कहा कि " यदि ऐसी संविधान सभा जिसमें भारतीय जनसंख्या के एक बड़े भाग के प्रतिनिधि नहीं हैं [अर्थात् मुस्लिम लीग], कोई संविधान तैयार करती है तो जाहिर है कि ब्रिटिश सरकार उस संविधान को देश के असहमत लोगों पर लादने की बात नहीं सोच सकती - जैसा कि कांग्रेस ने भी कहा है कि वह

ऐसा नहीं सोचेगी ।"¹ इस वक्तव्य के कारण लीग ने संविधान सभा में सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया । अन्तरिम सरकार की उपयोगिता अर्थहीन हो गयी । नेहरू वावेल से यह कहने के लिए बाध्य हो गये कि लीग या तो कैबिनेट मिशन योजना स्वीकार करे या सरकार से बाहर निकल जाये ।²

फरवरी 1947 में ब्रिटिश प्रधान मन्त्री स्टली ने हाउस आफ कामन्स में भारत सम्बन्धी अपनी नीति के सन्दर्भ में बयान देते हुए स्वीकार किया कि यह अनिश्चित हालत खतरे से भरी है, इसे ज्यादा दिन चलने नहीं दिया जा सकता । उन्होंने घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार 1948 के अन्दर भारत की सत्ता जिम्मेदार व्यक्तियों के हाथों में सौंप देना चाहती है ।³ इसी के साथ शासन को भारतीयों को सौंपने हेतु लार्ड वावेल के स्थान पर 24 मार्च 1947 को लार्ड माउंटबेटन को नियुक्त किया गया ।

भारत आने के पश्चात माउंटबेटन का पहला कार्य था, दी जाने वाली स्वतन्त्रता और बंटवारे के प्रश्न पर लीग और कांग्रेस की सहमति । लीगी तो पहले से ही विभाजन के लिए कटिबद्ध थे । उन्होंने कांग्रेसी नेताओं को भारत विभाजन के पक्ष में लाना प्रारम्भ किया । इसके लिए उन्हें पटेल और नेहरू की तरफ अपना ध्यान केन्द्रित किया । पटेल को झुकाने में कोई खास परेशानी का सामना नहीं करना पड़ा । पटेल ने ही अन्तरिम सरकार में वित्त विभाग लीग को देने की अगुआई की थी, लेकिन अब यह देख कर उनकी खीज बेहद बढ़ गयी कि वे होम मेबर होते हुए भी अपने विभाग

- 1- माइकल ब्रीचर : नेहरू का राजनीतिक जीवन चरित, मोती लाल बनारसी दास दिल्ली द्वारा प्रकाशित, सं० 1961 पृष्ठ
- 2- विपिन चन्द्र : भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, पृष्ठ 455
- 3- अयोध्या सिंह : भारत का मुक्ति संग्राम, पृष्ठ 75।

में चपरासी तक की नियुक्ति बिना वित्त विभाग की इजाजत के नहीं कर सकते थे । अतः बेटन ने बड़ी आसानी से पटेल को विभाजन के पक्ष में कर लिया । पटेल के बाद उन्होंने जवाहर लाल नेहरू की तरफ ध्यान दिया । बेटन और उनसे अधिक लेडी माउंट बेटन ने नेहरू को समझा बुझा कर अपने पक्ष में कर लिया ।¹

पटेल और नेहरू द्वारा विभाजन को स्वीकृति प्रदान करने के पीछे उनके स्वयं के विचारों को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है । पटेल को स्वतन्त्रता की शीघ्रता थी । उनका कहना था कि "हमें मरने से पहले हिन्दुस्तान को आजाद देखना है ।"² जवाहर लाल ने भी यह स्वीकार किया है कि "यह कठोर सत्य है कि हम धक चुके थे । पिछले कई वर्षों से हम संघर्ष कर रहे थे । हम में से कई लोग ऐसे थे जो जेल नहीं जाना चाहते थे ।"³ इस तथ्य की पुष्टि साम्यवादी और गांधीवादी दोनों करते हैं । इन लोगों का कहना है कि इसी लिए उन लोगों ने गांधी जी की उपेक्षा भी की, जिसके कारण ही गांधी जी की जीने की इच्छा तक समाप्त हो गयी । गांधी जी की विभाजन के प्रश्न पर अन्तिम सहमति के सम्बन्ध में मौलाना आजाद का खयाल था कि वे सरदार पटेल के कारण बंटवारे का विरोध न कर सके और उसके समर्थक बन गये ।

विभाजन के निर्णय को कांग्रेस द्वारा स्वीकृति प्रदान करने के सम्बन्ध में यह तर्क भी दिया जाता है कि उस समय साम्प्रदायिक हिंसा अपने चरम पर पहुँच गयी थी । अराजकता और निरुपाय नागरिकों की हत्या

1- मौलाना आजाद: इंडिया विन्स फ्रीडम, ओरियन्टल लॉंग मैन्स बोम्बे द्वारा प्रकाशित सं० 1957 पृष्ठ

2- जरहरीर द्वारकादास पारख एवं उत्तम चन्द दीपचन्द शाह॥सम्पादक॥, सरदार पटेल के भाषण, नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित, *

3- आर० सी० मजूमदार : रूगल फार फ्रीडम पृष्ठ 769 *॥सं० 1950, पृ० 257॥

रोकने के लिए ही कांग्रेसियों को विभाजन के निर्णय को मंजूरी देनी पड़ी । तत्कालीन वातावरण में यह जरूरी हो गया था । परन्तु अराजक और दूषित वातावरण का कारण क्या था ? निश्चित रूप से इसका महत्वपूर्ण कारण था कांग्रेस द्वारा मुस्लिम समाज को अपनी तरफ आकृष्ट न कर पाना । इस तथ्य की पुष्टि 1946 के चुनाव परिणामों से स्पष्ट रूप से हो जाती है ।

कांग्रेस के तमाम ऐसे क्रिया कलाप थे जो मुस्लिम समाज को प्रारम्भ से दूर करते चले आ रहे थे । बीच-बीच में जब भी कोई एकता का रास्ता निकलता तो कांग्रेस की अदृष्टीयता और अनिश्चितता भरी नीतियों के कारण अवरोध हो जाता । इसी कारण साम्प्रदायिक शक्तियाँ कमजोर पड़ने के बजाय बढ़ती गयीं । हिन्दू नेता और संस्थाएँ लीग के साम्प्रदायिक कार्य कलापों और उसके उग्र रूप से बचाव का तर्क देते हुए हिन्दू हितों को लेकर हंगामा खड़ा कर रहे थे । इससे भी कांग्रेस की स्थिति कमजोर हो गयी क्योंकि हिन्दू हितों की रक्षा के दावेदार नेता कांग्रेस में भी थे । साम्प्रदायिकता का जहर अपने चरमोत्कर्ष पर था । इससे बचने के लिए कांग्रेस के पास विभाजन के अतिरिक्त कोई चारा भी नहीं था ।

विभाजन की स्वीकृति के पीछे एक झूठी आशा यह भी थी कि अंग्रेजों के चले जाने के बाद भारतीय आपसी मत भेदों को भुला देंगे । कांग्रेसियों को यह भी उम्मीद थी कि मुसलमान इस बात पर अमल नहीं करेंगे । किसी को इस बात की उम्मीद ही नहीं थी कि घटनाओं का क्रम इतनी तीव्रता से परिवर्तित होगा । न तो दंगों की कल्पना की गयी, न इतने बड़े पैमाने पर स्थानान्तरण की समस्या के बारे में सोचा गया । अन्तः इस भयानक भूल ने विशाल पैमाने पर त्रासद स्थितियों को जन्म दिया । सन् 1946 के भयानक दंगों को इतनी जल्दी भुला देना निश्चित रूप से आश्चर्य

जनक तथ्य है । उसी समय यह बात साफ़ हो जानी चाहिए थी कि साम्प्रदायिकता का शरीर इतना जर्जर हो चुका है कि विभाजन रूपी आपरेशन का औजार उसके सम्पर्क आने के बाद स्वयं कीटाणु ग्रस्त हो गया । जो कार्य पहले ही हो जाना चाहिए था वह बाद में हुआ । विभाजन को स्वीकृत प्रदान की गयी परन्तु असमय ।

कांग्रेस और लीग के नेताओं की सहमति पाकर माउंट बेटन ने लंदन से सरकार की सहमति पाकर विभाजन सम्बन्धी एक योजना प्रस्तुत की जिसे माउंट बेटन योजना कहा गया । बाद में इसे भारत योजना कानून में सम्मिलित कर लिया गया । जो निम्नलिखित थी ।

1- हिन्दुस्तान को दो हिस्सों, भारतीय संघ और पाकिस्तान संघ में बाँट दिया जायेगा ।

2- इन दोनों राज्यों की सीमा निर्धारित करने से पहले पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेश और असम की सिलहट और सिन्ध विधान सभा में यह जानने के लिए ओट डाला जायेगा कि उक्त दोनों राज्यों में से वो किसमें शामिल होना चाहते हैं ।

3- विभाजन से पहले पंजाब और बंगाल की सीमा समस्याओं के हल हेतु रास्ता चुनना होगा । इसके लिए मुस्लिम बहुसंख्यक वर्ग और हिन्दू बहु संख्यक वर्ग में प्रत्येक विधान सभा को बाँट कर हर वर्ग अपने प्रान्त के विभाजन के पक्ष में ओट देगा कि वे पूरे के पूरे पाकिस्तान चले जायेंगे या दोनों राज्यों में बाँट दिये जाएँ । अगर एक वर्ग विभाजन चाहेगा तो दूसरे वर्ग के न चाहने पर भी बाँटवारा कर दिया जाएगा ।

4- इन कार्यों को पूरा कर लेने के बाद हिन्दुस्तान की संविधान सभा को भारतीय संघ की सभा और पाकिस्तान संघ की सभा में बाँट कर

दोनों राज्यों को डोमेनियन स्टेट [अधिराज्य] दिया जायेगा ।

5- देशी रियासतों को यह छूट होगी कि वह किसी डोमेनियन में शामिल होना चाहती हैं या ब्रिटेन से पहले के सम्बन्ध बनाए रखेंगी, परन्तु उन्हें डोमेनियन स्टेट नहीं दिया जाएगा ।¹

स्पष्ट रूप से हिन्दुस्तान के दो टुकड़े करने वाली यह योजना 3 जून 1947 को वर्किंग कमेटी की बैठक में स्वीकृत कर ली गयी । 14 जून 1947 को कांग्रेस महासमिति की बैठक में गोविन्द वल्लभ पंत ने देश विभाजन की 'माउंट बेटन योजना' को स्वीकार करने का प्रस्ताव पेश किया और सदा से विभाजन का विरोध करने वाले आजाद से इसका समर्थन करवाया । पटेल और नेहरू तथा गांधी के समर्थन के बावजूद यह प्रस्ताव पूर्ण बहुमत से पास न हो सका ।

4 जुलाई सन् 1947 को भारत की स्वाधीनता सम्बन्धी विधेयक ब्रिटिश संसद में पेश किया गया । बिना किसी संशोधन के हाउस आफ कामन्स और हाउस आफ लार्ड्स द्वारा इसे पास कर दिया गया । 18 जुलाई को इस पर ब्रिटिश सम्राट का हस्ताक्षर हुआ । घोषणा कर दी गयी कि हिन्दुस्तान के दो टुकड़े करते हुए 15 अगस्त को दो अलग-अलग अधिराज्य कर दिये जाएंगे । 14 अगस्त 1947 को पाकिस्तान की स्थापना हुई । मुहम्मद अली जिन्ना इसके गवर्नर बने और लियाकत अली प्रधान मन्त्री । भारतीय अधिराज्य के प्रधान मन्त्री जवाहर लाल बने, लार्ड माउंट बेटन को गवर्नर नियुक्त किया गया ।

15 अगस्त की रात को साढ़े बारह बजे स्वतन्त्रता समारोह अनियन्त्रित उल्लास के साथ मनाया जा रहा था । मेले-तमाशे का सा दिन हो

गया जब लाखों दबी छिपी भावनाएँ उन्मुक्त होकर बाहर निकल पड़ीं । परन्तु हर्षोल्लास की रण भेरियाँ अभी पूरी तरह अपने स्वर की गूँज को चतुर्दिक बिछेर भी न पायी थीं कि साम्प्रदायिक रणभेरियों की प्रीतध्वनियाँ दूर से आने लगीं थीं । स्वतन्त्रता दिवस केवल विजय का दिवस न था । उसके बाद आने वाले थे दिन पाश्चवक निर्दयता के, प्रवासियों के काफलों-के-काफलों के एक तरफ से दूसरी तरफ आने जाने के ।¹ देश विभाजित होते ही नयी बनी सीमा के दोनों तरफ अमानुषक कृत्यों का क्रूरतम इतिहास रचा जाने लगा था ।

विभाजन की त्रासदी से प्रभावित होने वाले क्षेत्रों में पंजाब का प्रदेश अग्रणीय है अतः इसकी चर्चा भी कर लेना आवश्यक है । वे कौन से कारण थे जिनको इन भयावह स्थितियों का जिम्मेदार समझा जाए ?

पंजाब में अल्प संख्यक हिन्दू थे, फिर भी शुद्ध आन्दोलनों का प्रभाव यहीं अधिक था, इसका कारण पंजाब के क्षेत्र में आर्य समाज का सर्वाधिक प्रभावी होना था । इस स्थिति में यहाँ के हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य आपसी द्वेष की अधिकता अस्वाभाविक नहीं थी । इसके अतिरिक्त यहाँ साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने वाले कारणों में यहाँ की अर्थ व्यवस्था और उसके वितरण का भी चरित्र महत्वपूर्ण है । अविभाजित पंजाब में सिक्खों की आबादी केवल 13 प्रतिशत थी, किन्तु पंजाब की 40 प्रतिशत जमीन उनके कब्जे में थी । पंजाब की कृषि का दो तिहाई भाग सिक्खें पैदा करते थे ।² मुसलमानों की नफ़ेत बढ़ाने में हिन्दू व्यापारी और पूँजीपति वर्ग भी कारक के रूप में थे । पंजाब का अधिकांश व्यापार हिन्दुओं के हाथ में ही था । अधिकांश मुस्लिम छोटे-छोटे व्यापारी और भूमिहीन किसान के रूप में जी रहे थे ।³ इन

1- सूर्य नारायण रण सुभे : देश विभाजन और हिन्दी कथा साहित्य पृ० 57

2- वही, पृष्ठ 56

3- वही, पृष्ठ 56

स्थितियों में दोनों वर्ग में मतभेद उत्पन्न हो जाना अस्वाभाविक न था । आर्थिक स्तर पर कमजोर मुसलमानों को मौके की तलाश भर थी वह हिन्दू मुसलमान के नाम पर नेतृत्व के साथ उन्हें मिल गयी । इसी समय सिकस और मुसलमानों के मध्य ऐतिहासिक द्वेष भावना को भी पालित-पोषित होने का अवसर प्राप्त हुआ ।

पंजाब की राजनैतिक परिस्थितियाँ भी वहाँ की भयानक त्रासद स्थितियों के लिए उत्तर दायी हैं । सन् 1920 तक फजले अली ने कांग्रेस में रहने के पश्चात पंजाब में युनियनिस्ट पार्टी की स्थापना की । जनरल डायर के समय में काउंसिल में रहते हुए उन्होंने मुसलमानों का पक्षपात किया, परन्तु बाद में पक्के राष्ट्रवादी हो गये । उनका इस बात पर विश्वास हो गया कि "साम्प्रदायिक दूरियाँ धर्म पर आधारित नहीं, अपितु सत्ता प्राप्ति और देश के अल्प-स्वरूप आर्थिक उत्पाद को बाँट लेने की वृत्ति के कारण उत्पन्न हुई हैं ।" उनकी इस विचार धारा के कारण उनके प्रयासों के फल-स्वरूप सिकस, हिन्दू-मुसलमान सब एक मंच पर आये । और उनकी मृत्यु के बाद इस परम्परा को खिजर हयात ने आगे बढ़ाया ।

उत्पन्न होती एकता की भावना को लेकर लीग को अपना अस्तित्व समाप्त होता प्रतीत हुआ। उसने विरोध करते हुए सारे प्रान्त में उग्रवादी लीग-यों के एक दस्ते नेशनल गार्ड्स की स्थापना की, जवाब में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की स्थापना उग्रवादी हिन्दुओं की तरफ से की गयी । खिजर हयात के द्वारा इसे गैर कानूनी करार देने पर दोनों दलों ने खिजर हयात को हिंसा से जवाब देना शुरू कर दिया । हिंसा के उग्र होने पर उन्होंने त्याग पत्र दे दिया । पंजाब की स्थिति नियन्त्रण से बाहर हो गयी । भयानक रक्त पात का युग प्रारम्भ हो गया ।

स्वतन्त्रता का जश्न अभी जोर भी नहीं पकड़ पाया था कि पंजाब के दोनों भागों, जो कि अब भारत और पाकिस्तान में बँट चुके थे, भयानक दंगे एवं मारकाट की खबरें आने लगीं दिल्ली से लेकर कराँची तक का पूरा क्षेत्र साम्प्रदायिक उन्माद की आग में धूँ-धूँ करके जल उठा । पाकिस्तान का निर्माण तो साम्प्रदायिक आधार पर हुआ था इस लिए वहाँ की आबादी प्रवासित होने के लिए विवश हुई मगर भारत, जिसका निर्माण धर्म निर्वेक्षता की आधार भूमि पर हुआ, वहाँ साम्प्रदायिकता अपने चरम पर पहुँच गयी । साम्प्रदायिक दंगों को नियन्त्रित करने वाला शासन तन्त्र भी उससे प्रभावित हुए बिना न रहा । सेना के विभाजन का परिणाम यह हुआ कि उसके अन्दर खुद साम्प्रदायिकता घुस गयी । सैनिक शान्ति स्थापित करने की जगह स्वयं उसमें शरीक हो गये ।¹ साम्प्रदायिक उन्माद की भयानकता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि पटेल जैसे जुझारू नेता 1947 के दंगों के दौरान खुले आम मुसलमानों की निष्ठा पर शक करने लगे ।² भारत के आम मुसलमानों के दिल में यह बात घर कर गयी कि "मुसलमान अब यहाँ रह नहीं सकता । हुक्मत उसको रखना नहीं चाहती । दिल्ली से निकालना ही उसका मकसद है । हिन्दू राज बनाने का मंसूबा है और हम खुद नहीं रहना चाहते ।"³

अपवाद, भय और उन्माद की भावना पर आधारित यह साम्प्रदायिक उन्माद जैसे-जैसे बढ़ा दोनों तरफ़ के अल्प संख्यक गावों देहातों से पलायन करने लगे । सीमाओं को पार करते समय लोग अपने साथ बदले और

1- अयोध्या सिंह : भारत का मुक्ति संग्राम, सं० 1977 पृष्ठ 78।

2- माइकल ब्रीघर : नेहरू राजनीतिक जीवन चरित : पृष्ठ 218

3- बेगम अनीस किदवाई : आजादी की छाप में, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया द्वारा प्रकाशित, सं० 1990 पृष्ठ 99

कटुता की भावना लाए जो कि और भी घातक सिद्ध हुई। साम्प्रदायिकता से उत्पन्न पशुता ने मानवता को परास्त कर दिया।

साम्प्रदायिक उन्माद के फल स्वरूप दोनों देशों में कितने लोग मारे गये, कितने बेघर हुए, कितनी युवतियों के साथ बलात्कार हुआ, कितनीयों का अपहरण किया गया इसका कोई हिसाब नहीं। सिर्फ पंजाब में 600000 मारे गये 14000000 लोग शरणार्थी हुए। दोनों पक्षों द्वारा 10000 युवतियों का अपहरण किया गया, बलपूर्वक उनका धर्म परिवर्तन किया गया था या उन्हें नीलाम कर दिया गया। हजारों युवतियों ने इस स्थिति के आने से पहले ही आत्म हत्या कर ली। सामूहिक आत्म हत्या के अनेक उदाहरण तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से देखे जा सकते हैं।

तत्कालीन स्थितियों से प्रभावित मासूम बच्चों की स्थिति का वर्णन करते हुए बेगम अनीस किदवाई ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'आजादी की छाप में' एक कैम्प का चित्रण करते हुए लिखा है कि "आमर की मीजल का विशाल कमरा उस समय खाली था और बरामदे में बच्चे धूप-ताप रहे थे। कुछ बच्चों के सिर में जलम थे कुछ की टांगे टूटी हुई थीं। एक लड़की का हाथ बाजू से कट गया था। एक सात साल के बच्चे का पेट फटा हुआ था। खाल जुड़ चुकी थी और टाँके काटे जा चुके थे एक नौ माह का बच्चा जखमी सिर और हाथ लिए अपनी छोटी सी मसहरी पर कराह रहा था।"² इसी पुस्तक में लेखिका एक तीन साल की बच्ची की भयानक क्रूर कहानी के बारे में लिखती है कि "वह नन्ही सी जान 'शेर दिल सूरमाओं' की बर्बरता का इस बुरी तरह शिकार हुई कि ख्याल से रोगटे खड़े हो जाते हैं। भाला

1- लियोनार्ड मोसले, लास्ट डे आफ ब्रिटिश राज, पृष्ठ 244-246

2- बेगम अनीस किदवाई : आजादी की छाँव में, पृष्ठ 66

उसके गुप्तांग से गुजर कर पेट तक पहुँच गया और इतने गहरे जछम में जब गजों लम्बी दवा में डूबी हुई बत्ती जाती थी तो बच्ची की तड़प और माँ के आँसू देखना किसी महसूस करने वाले जिन्दा इन्सान के बस की बात न थी ।"¹

बच्चों से कम बदतर हालत स्त्रियों की भी नहीं थी । विभाजन के समय स्त्रियों पर होने वाले क्रूरतम अत्याचार की घटनाओं की मिसाल दुर्लभ है । बेगम अनीस किदवाई ने अपनी पुस्तक में एक स्थान पर लिखा है "हमारे सामने इस वक़्त भी दो लड़कियाँ मौजूद हैं उनमें से एक की उम्र सत्रह साल की होगी दूसरी की मुश्किल से चौदह बरस । सत्रह साल की लड़की एक ही बार में दो मदों के पैसे से खरीदी गयी और दोनों की मिली जुली दिलचस्पियों का खिलौना बनी । चौदह बरस की लड़की अब से दो बरस पहले इस मुसीबत का शिकार हुई जब कि उसकी उम्र सिर्फ़ बारह साल की होगी और आज वह खामोश प्रश्न-चिह्न बनी हुई मेरे पास बैठी है ।² इन लड़कियों औरतों के पास कहे सुनने को कुछ भी बाकी नहीं बचा था । लोगों में नैतिकता का इतना ह्रास हो चुका था कि उनकी ऐसी दयनीय दशा के बाद भी दरिंदे कैम्पों में उन्हें अपना शिकार बनाने से छोड़ नहीं रहे थे ।, कैम्पों में अक्सर ऐसे हादसे हो जाते कि किसी की बेटी को कोई भगा ले जाता । हालात ने जनता को दिलेर, गुंडा और बेरहम बना दिया ।³

विभाजनोपरान्त के भयावह वातावरण ने नेताओं की इस आशा को कि, विभाजन के बाद साम्प्रदायिक समस्याएँ सुलझ जाएँगी, झूठ सिद्ध हो

1- बेगम अनीस किदवाई : आजादी की छाप में , पृष्ठ 70

2- वही, पृष्ठ 318

3- वही, पृष्ठ 319

गयी । समस्याएँ कम होने के बजाय नये बने देशों की सीमाओं के आर-पार होने वाली साम्प्रदायिक उन्माद की घटनाएँ आम मानसिकता को प्रभावित करते हुए बदला जैसी अन्तहीन भावना को पालित पोषित करती रहीं । मात्र भूमि को छोड़कर आने वाले विस्थापित लोग बदले की भावनाओं का भी आदान प्रदान करने लगे ।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, हिन्दू महा सभा जैसी साम्प्रदायिक शक्तियाँ एवं कुछ रूढ़िवादी कट्टर मुस्लिम जमातें धर्म की आड़ लेकर अपनी आतंकवादी गतिविधियों के द्वारा विघटन की दिशा में पहले से ही कार्यरत थीं । विभाजन की घटना के पश्चात सेना एवं पुलिस जैसी संस्थाओं, नागरिक प्रशासन के अधिकारियों के साथ कुछ महत्वपूर्ण राष्ट्रीय स्तर के नेता भी साम्प्रदायिकता के प्रभावों से स्वयं को अलग न रख सके । तो आम जनता का इन विहम्बनात्मक परिस्थितियों में साम्प्रदायिक मनःस्थिति से बच पाना मुश्किल कार्य था ।

विभाजन पूर्व ही स्थितियों को आतंकपूर्ण बनाने में प्रशासन तन्त्र सक्रिय सहयोग का उदाहरण दे चुका था । बंगाल में सुहरा वर्दी की सरकार ने 16 अगस्त 1946 को प्रत्यक्ष कार्यवाही के लिए जान बूझ कर छटे हुए गुण्डों को रिहा कर दिया था । 16 अगस्त को कलकत्ता में सार्वजनिक अवकाश की घोषणा भी साम्प्रदायिक गतिविधियों में सहयोग के उद्देश्य से की गयी थी । दूसरी तरफ पंजाब में खिजर हयात की युनियनिस्ट पार्टियों को हटाने के लिए लीग ने प्रत्यक्ष संग्राम छेड़ा, अकाली नेता मास्टर तारा सिंह जो अलग से सिक्खस्तान की माँग कर रहे थे, संतुलन को खो बैठे और मुस्लिम लीग को खत्म करने का अह्दान किया ।¹ दोनों दलों की

1- अयोध्या सिंह : भारत का मुक्ति संग्राम, पृष्ठ 776

कार्य वाहियों के फल स्वरूप संयुक्त पंजाब के अनेक शहरों में बर्बरता का इतिहास रचा गया ।

नागरिक प्रशासन के अन्तर्गत पुलिस वालों की यह इसीलियत थी कि किसी मुहल्ले या गाँव में पुलिस की इयूटी लग जाने के म्याने यह थे कि सारा इलाका वीरान हो जाए । उन दिनों कत्ल करने वाले के बजाय कत्ल होने वाले के रिश्तेदार गिरफ्तार होते थे और मुजरिम के बजाय रिपोर्ट करने वाला पकड़ा जाता था ।¹ सरकारी कर्मचारियों की नैतिकता का पतन इस हद तक हो चुका था कि उनके सामने कुकर्म होते रहते थे और वे खड़े देखते रहते थे । बँटवारे के पश्चात स्थानान्तरण की अफरा तफरी में भयातुर भारतीय मुसलमानों की शुद्धि में अधिकारियों का पूर्ण संरक्षण प्राप्त था । आजादी की छाँव में उल्लेखित एक व्यक्ति का बयान जो कि शुद्धि को हिंदू बनाया गया था द्रष्टव्य है - "साहब, वह तो चालीस गाँव की पंचायत करके एक तहसील दार साहब के सामने हम हिन्दू बनें थे और उनसे भी बड़े अफसर से पूँछ-ताछ कर, इजाजत लेकर तब यह किया गया था ।"²

1950 में बंगाली शरणार्थियों के सम्बन्ध में भारतीय नेताओं की प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में माइकल ब्रीचर ने अपनी पुस्तक 'नेहरू राजनीतिक जीवन चरित' में लिखा है कि "भारत में बहुत से लोगों को लगा कि 1947 के अन्याय का बदला निकालने का बहुत अच्छा अवसर हाथ आया है । पटेल ने स्वयं एक आँख के लिए दस आँख की नीति की हिमायत की, उनका मतलब था कि पूर्वी बंगाल से अगर एक हिन्दू निकाला जाय तो भारत से दस मुसलमानों को निकाल बाहर किया जाये.....सरदार के इस रुख को

1- बेगम अनीस किदवाई : आजादी की छाँव में, पृष्ठ 113

2- वही, पृष्ठ 272

भारी समर्थन प्राप्त था ।¹ सरदार पटेल जैसे राष्ट्रीय एवं लोक प्रिय नेता की मानसिकता से विभाजनोपरान्त मानसिक विकृति की भयानकता का आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है ।

शताब्दियों से एक साथ एक ही जमीन की कोख में पलते-बढ़ते एक साथ रहते आ रहे लोगों पर साम्प्रदायिक उन्माद का असर ऐसा हुआ कि साधारण दिनों में उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी । डाकू-लुटेरों, असमाजिक तत्वों की तो बन ही आयी थी, सभ्य समाज के समझे जाने वाले लोगों की मानवता भी दम तोड़ रही थी । एक दूसरे सम्प्रदाय वालों का विश्वास आपस में समाप्त हो चुका था । पड़ोसी-दोस्त भी अलग सम्प्रदाय के लोगों की मदद करने को तैयार नहीं थे । शकाओं की अधिकता ने विश्वास की जड़ों तक को हिला दिया था । अविश्वास का आलम यह था कि एक सम्प्रदाय का व्यक्ति दूसरे सम्प्रदाय की मदद करना चाहता तो उसी के सम्प्रदाय के लोग उसे भला बुरा कहते । गांधी जी तक को 'मुहम्मद गांधी' की संज्ञा से अभिहित किया जाने लगा । आजाद हिन्दुओं का कुत्ता कहलाए ।

अमानवीयता अपनी सीमाओं को पार कर चुकी थी । कैम्प में बैठने वाले दूध जो कि शरणार्थी बच्चों के लिए होता था । कर्मचारीगण साफ कर जाते थे ।² जो थोड़ी सी शक्ति या पैसे वाले होते रोटी उन्हीं को मिलती थी उनके अपने भाई-बन्धु सामने ही भूखे रह जाते थे । धर्म गुरुओं ने भी अपनी रोटियाँ सेकने में कोई कमी न रख छोड़ी थी । जिन लोगों में मानवीयता का कुछ अंश बाकी रह गया था, दूसरों के आगे हाथ फैलाने में शर्म करते हुए अपना क्रोध, हिन्दू होते तो मुसलमानों पर मुसलमान

1- माइकल ब्रीचर : नेहरू राजनीतिक जीवन चरित : पृष्ठ 236

2- बेगम अनीस किदवाई : आजादी की छांव में, पृष्ठ 40

होते तो हिन्दुओं पर, सरकार पर, देवी देवताओं पर फकीरों यहाँ तक ईश्वर पार उतारते ।

बेगम अनीस किदवाई ने बूढ़ों की हालत लिखते हुए लोगों की दमतोड़ती मानवता का वर्णन किया है "पाकिस्तान जाने वाले सपूत बेटे अपनी माओं, नानियों और दादियों को छोड़ कर चल दिये थे । एक दिलावर ने जब देखा कि अन्धी बुढ़िया न मरती है न जीती, अब इसको पीठ पर लादना ही पड़ेगा तो जीती जान को कब्र में फेंक दिया ।"¹ कफन के बिना लाशें पुराने कपड़ों एवं औरतों के दुपट्टों में लिपटा कर दफन की जा रही थीं, लेकिन लोग लाशों की अन्तिम वि्रथा करने को न तैयार थे । सब को स्वयं की चिन्ता थी डर और दहशत की भावना इतनी गहराई से लोगों के हृदय में प्रवेश कर गयी थी कि सब मुर्दा के समान हो गये थे । आँखों में चमक बाकी थी तो केवल बदले की भावना की । अपंग शरीर वाला व्यक्ति जहाँ से अपंग होकर आया था वहाँ सिर्फ़ इस लिए जाना चाहता था कि बदला ले सके । 20 लोगों के परिवार में बचा अकेला व्यक्ति सिर्फ़ इसलिए जीवित रहना चाहता था कि वह कालों की कौम से बदला ले सके ।² मनुष्य का अस्तित्व लगभग समाप्त हो चुका था धर्म और सम्प्रदाय ही शेष थे ।

विभाजन से जुड़ी हुई अनेक समस्याएँ विभाजन के पश्चात प्रश्न चिह्न बन कर सामने आयीं । इन समस्याओं में सबसे महत्वपूर्ण समस्या थी शरणार्थियों की, जिसके कारण आजादी के बहुत दिन बाद भारत की सरकार को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । यह भयंकरता विभाजन के असमय निर्णय का परिणाम थी । असमय निर्णय की चर्चा करते समय कहा

1- बेगम अनीस किदवाई : आजादी की छांव में, पृष्ठ 54

2- वही, पृष्ठ 53

ज्ञाता है कि अंग्रेजों और भारतीय नेताओं को विश्वास था कि पाकिस्तान बन जाने के बाद साम्प्रदायिक दंगों की आधार भूमि समाप्त हो जायेगी। जबकि वास्तविकता यह है कि साम्प्रदायिकता की भावना का जन्म भारत में बहुत पहले हो चुका था पाकिस्तान की बात बहुत बाद में उठी। पाकिस्तान की बात उठने तक भारत में साम्प्रदायिकता अपने चरम पर पहुँच गयी थी।

इसी सम्बन्ध में यह भी प्रश्न उठता है कि प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस से प्रारम्भ हत्या काँड और स्वतन्त्रता से पहले पंजाब की घटनाएँ महज स्वतंत्रता के संघर्ष की एक दुर्भाग्यपूर्ण अति थीं, अथवा कुछ और, निश्चित रूप से ये घटनाएँ लम्बे समय से पलते बढ़ते आ रहे साम्प्रदायिक अलगाव का परिणाम था, जिसको अनदेखा करके नेताओं और अंग्रेजों ने भारी भूल की और अनेक समस्याओं के साथ शरणार्थी जैसी विकराल समस्या को जन्म दिया।

इसकी विकरालता का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि "मध्य-पूर्व में इजराइल के निर्माण में जितने शरणार्थियों ने देशान्तर किया था, उससे दस गुना शरणार्थी भारत विभाजन के समय सड़कों पर आ गये थे। द्वितीय विश्व युद्ध में पूर्वी यूरोप में जितने व्यक्ति पलायन की चेष्टा करते हुए लापता हो गये थे, उससे लगभग चार गुना व्यक्ति भारत विभाजन में लापता हो गये।" कलकत्ता से प्रारम्भ होकर बिहार पंजाब की दिल दहला देने वाली घटनाएँ अभी ताजा ही थीं कि हजारों आदमी भाग कर हिन्दुस्तान आने लगे और मीलों लम्बा आदीमियों का रेला पाकिस्तान की तरफ उमड़ पड़ा। आबादी के स्थानान्तरण हेतु दोनों सरकारों की तरफ से

1- कॉलिन्स-लैम्पयर : आधी रात की आजादी, लैरी कॉलिन्स और

गाइड प्रकाशन अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित सं० 1976, पृष्ठ 250

स्पेशल ट्रेनों इत्यादि की व्यवस्था की गयी, परन्तु दिल्ली से कराँची जाने वाली ट्रेन सिर्फ लाशों के मलवे लेकर पहुँचाती । कराँची से दिल्ली की तरफ आने वाली ट्रेनों का भी यही हाल था । पैदल ही सीमा पार करने वाली आबादी की संख्याएँ सिर्फ अनुमान पर आधारित हैं । ,

अभी शरणार्थियों का रेलवा यमा भी नहीं था कि उनके पुर्नवास, रोजगार एवं भरण-पोषण की समस्या सामने आ गयी । एक ही साथ इतनी बड़ी जन संख्या की इन समस्याओं से नये बने राष्ट्रों के लिये निपटना आसान नहीं था । शरणार्थियों के कारण भी दंगे-फसाद हुए । ये जहाँ जाते अपने साथ अत्याचार की कहानियाँ भी ले जाते । उनके साथ-साथ स्थानीय लोगोंमें भी बदले की भावना उत्पन्न हो जाती । दिल्ली के भयंकर दंगोंमें शरणार्थियों द्वारा लायी गयी बदले की भावना का महत्वपूर्ण हाथ रहा है ।

शरणार्थियों के अभावों का यह हाल था कि वे जानकर से बदतर जीवन जीने को मजबूर थे । हाथों में ले-ले कर या कागजों और ठीकरों में खाना रखते और ठीकरों पर मिट्टी मिले हुए आटों की सियाह रोटियाँ पकाते । तवा देगची और गिलास सब का काम पत्तों और मटकी के टुकड़ों से लेते थे । दो ईंट रख कर लोग जरूरतों से निपटते और कभी-कभी उन्हीं दो ईंटों से बावर्ची खाना भी बना लिया जाता ।¹

शरणार्थियों की त्रासदी को भ्रष्टता और अनैतिकता ने और भी भयंकर रूप प्रदान कर दिया था । छोटे-छोटे सामाजिक कार्य कर्ता से लेकर बड़े अफसरों द्वारा बेइमानी, लूट-खसोट और रिश्वत खोरी तो आम बात थी । नैतिक पतन और विकृत मान सिकता की अधोगति तत्कालीन दिल्ली

के एक अप्पसर के बयान से स्पष्ट हो जाती है, "अब राष्ट्रीय स्वयं-सेवक संघ की जरूरत क्या बाकी रह गयी है इसको तो हमने मुस्लिम लीग को चेतावनी देने के लिए आगे बढ़ाया था । अब लीग खत्म हो गयी उसे भी खत्म कर देना चाहिए ।"।

विभाजन की भयावह स्थितियों के बीच घनघोर अन्धकार में टिम-टिमाते दीपक के समान ही, यह बात कम महत्वपूर्ण नहीं थी कि मानवीयता और करुणा यत्र-तत्र दिखती थी । कूड़े-कबाड़े के ठेर में दो-चार चमकते मोती नजर आ जाते थे । कुछ सकारात्मक शक्तियाँ भी कार्यरत थीं जो कि अंधेरे में टिमटिमाते दीपक का कार्य कर रही थीं । बेगम अनीस किदवाई ने अपनी पुस्तक में एक बहादुर सिख को याद करते हुए लिखा है कि, "पंजाब का ज्वालामुखी जिन दिनों लावा उगल रहा था तो यह पचास साल का सिख जान हथेली पर लिए हुए जलती आग में घुसकर मुसीबतजदा दोस्तों, पड़ोसियों और औरतों-बच्चों को निकाल कर पनाह की जगह पहुँचाता रहा । अपनों की तलवारों के घाव भी उसके जोश को ठंडा न कर सके ।² जब अल्प संख्यक वर्ग पलायन कर रहे थे तो अनेक बहुसंख्यकों ने उनकी सहायता की । फ्रिन्टियर के ज्यादातर शरणार्थी अपने मुस्लिम दोस्तों और लाल वस्त्र धारी साथियों को याद करते रहते थे जिन्होंने उनकी जाने और इज्जत बचाकर उनको हिन्दुस्तान पहुँचाने में मदद दी ।"³

ऐस दयावान भी थे जिन्होंने परिवार से विछड़ गयी जवान रिस्त्रियों को बचाने के लिए अपने धर्मावलीम्बियों से दुश्मनी मोल ली और रुपये पैसे भी

1- बेगम अनीस किदवाई : आजादी की छाँव में, पृष्ठ 303

2- वही, पृष्ठ 305

3- वही, पृष्ठ 305

खर्च किये । बाद में उनके सम्बन्धियों के मिल जाने पर खुशी-खुशी उन्हें विदा किया । परिवार से बिछड़ गयी लड़कियों के खोजने के सम्बन्ध में बेगम अनीस किदवाई ने लिखा है कि, "बड़ी सहसान फरमाशी होगी अगर मैं उस सच्चे कांग्रेसी का जिफ्र न करूँ जिसने लड़कियों की तलाशी के सिलसिले में बिताती, मिनहार और सब्जी बेचने वाले का रूप धारण करके शहर के खतरनाक हिस्सों में बीसियों का पता लगाया और रिश्तेदारों को इतला दी ।" ।

रिलीफ कमेटी के सदस्यगण, शरणार्थियों के कैम्पों में कार्य करने वाले स्वयं सेवक, शैक्षणिक गतिविधियों को चलाने वाले नवयुवक, अस्पताल के डाक्टर और नर्सों, इत्यादि की मिली-जुली शक्तियों के प्रयासों का शान्ति और भाई चारा स्थापित करने में सक्रिय योगदान रहा है । वास्तव में अगर ये सकारात्मक शक्तियाँ न होतीं, यदि हिंसा का उत्तर केवल हिंसा ही होती तो समस्या अन्तहीन हो जाती ।

1- बेगम अनीस किदवाई : आजादी की छाँव में, पृष्ठ 325

:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:

तृतीय अध्याय

:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:

भीष्म साहनी और राही मासूम रजा की रचनात्मक पृष्ठ भूमि

=====

किसी भी रचना का रचनाकार से गहन सम्बन्ध होता है । यह सम्बन्ध रचनाकार के चिन्तन से जुड़ा होता है । चिन्तन जितना ही गहरा, जितना ही यथार्थ और मानव मूल्यों की उन्नति का प्रेरक होगा रचना उतनी ही लोक प्रिय और टिकाऊ होगी । वह अपने कृतिकार का स्वर बनकर जन-जन तक उसका संदेश पहुँचाती हुई समय एवं काल की सीमाओं का उलंघन करके प्रत्येक काल एवं प्रत्येक मनुष्य के लिए समान धर्मा हो जाती है ।

एक अच्छे रचनाकार के लिए यह आवश्यक है कि उसमें अपने परिवेश, समाज और संस्कृति को समझने की क्षमता हो । रचनाकार की संवेदनशीलता का रूप अधिक मुखरित होता है । जीवन की पृष्ठ भूमि कुछ हद तक उसकी संवेदन-शीलता की नियामक होती हैं । उसकी पृष्ठ भूमि को प्रभावित करने वाली बाह्य शक्तियों में उसका अपना परिवेश, समाज; संस्कृति धर्म एवं अन्तर्-शक्तियों के रूप में उसके अपने तरह-तरह के अनुभव, घटनाएँ, आपसी सम्बन्ध, उसके अपने अन्दर होने वाले संघर्ष, विसंगतियाँ अन्तिर्वरोध और विडम्बनाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हुई उसके जीवन की परिधि को नियन्त्रित एवं संचालित करती हैं ।

रचनाकार के जीवन को प्रेरित करने वाली बाह्य एवं आन्तरिक शक्तियाँ उसकी संवेदना को बनाने में कार्यरत होती हैं । उसकी संवेदना को प्रेरित करने वाली ये शक्तियाँ उसके लिए संवेदना निर्माण के रूप में उसकी रचनात्मक पृष्ठ भूमि का कार्य करती हैं । यह कार्य उसके प्रारम्भिक जीवन से ही शुरू हो जाता है, जबकि रचना कर्म बाद में प्रारम्भ होता है । उसके रचना कर्म प्रारम्भ हो जाने के बाद भी उसके जीवन के ये विभिन्न पहलू

रचना कर्म से सतत सम्बन्धित रहते हुए नये-नये अनुभव संसारों से उसका परिचय कराते हुए उसकी क्षमता में वृद्धि करते हैं तथा रचना कर्म के विकास की प्रक्रिया में सतत सहायक होते हैं । रचनाकार की समझने की क्षमता, देखने की सूक्ष्म दृष्टि को और अधिक विकसित करके उसके अन्दर जीवन की अतल गहराइयों में उतरने की क्षमता उत्पन्न कर देते हैं । इसी लिए रचनाकार युग द्रष्टा की संज्ञा से अभिहित किया जाता है । उसके पद चिह्नों पर इतिहास गीत प्राप्त करता है और इतिहास कार की हर करवट पर रचना कार का अपना जीवन सन्निहित होता है ।

सन् 1915 ई० से सन् 1947 ई० के बीच का भारतीय इतिहास भारत के सम्पूर्ण राजनैतिक एवं वैधानिक इतिहास का महत्वपूर्ण भाग है । प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात् भारतीय राजनीति के पटल पर गांधी जी के उदय के साथ खिलाफत और असहयोग आन्दोलनों के परिणाम स्वरूप ब्रिटिश शासन हिल गया । साइमन कमीशन के बहिष्कार के साथ अंग्रेजों को अपनी शक्ति का सहसास दिलाते हुए रावी के तट पर पूर्ण स्वराज्य का संकल्प रंग लाया । 1935 का वर्ष आते-आते भारतीय अधिनियम 1935 के द्वारा सन् 1937 के चुनावों द्वारा केन्द्र एवं प्रान्तों में मन्त्रि मंडल स्थापित करने में सफल हो गया । इसी बीच द्वितीय युद्ध भी प्रारम्भ हो गया था । सन् 1939 के प्रारम्भ तक विश्व युद्ध से समस्त संसार झुलसने लगा । भारत को उसकी चिंगारी से बच पाना मुश्किल था, क्योंकि इंग्लैण्ड विश्व-युद्ध के महत्व पूर्ण पक्षों में से एक था ।

ब्रिटिश सरकार ने केन्द्रीय धारा सभा एवं प्रान्तीय मन्त्रि मंडलों की उपेक्षा करते हुए भारत को पूर्णतः के विरुद्ध युद्ध में अपने साथ सम्मिलित कर लिया । 1935 के अधिनियम की प्रभावता से उत्पन्न भारतीयों का आक्रोश



बिना केन्द्रीय सभा एवं प्रान्तीय मन्त्र मण्डलों की मन्त्रणा से भारत को युद्ध में सम्मिलित कर लेने से और अधिक बढ़ गया । 1940 का वर्ष आते-आते अंग्रेजों का कुचक्र स्पष्ट होता गया । युद्ध में भागेदारी की शर्त पर उन लोगों ने स्वतन्त्रता का प्रलोभन दिया था लेकिन भारत की स्वतन्त्रता प्रदान करने की दिशा में उन्होंने संकेत नहीं दिया ।

प्रतिक्रियारूप सन् 1941 में गांधी जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह छेड़ दिया । सन् 1942 में क्रिप्स मिशन असफल होकर लौट गया । भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ हो गया । कुल मिलाकर स्थिति अत्यन्त उग्र रूप धारण कर चुकी थी । जिसको दबाने के लिए भयानक दमनात्मक कार्य वाहियों की गईं। इन सब घटनाओं के समानान्तर कांग्रेस और मुस्लिम लीग के आपसी मतभेद भी बढ़ते रहे । अंग्रेज आग में तेल डालने का कार्य करते हुए इन दोनों दलों के आपसी मतभेदों को बढ़ाते रहे । परस्पर बढ़ते मतभेदों का परिणाम यह हुआ कि बंगाल और बिहार में भयानक साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे और धीरे-धीरे उनका विस्तार सम्पूर्ण उत्तर भारत तक हो गया । अन्त में इस साम्प्रदायिकता का परिणाम देश विभाजन के रूप में प्राप्त हुआ ।

विषमताओं की ऐसी ही युगीन परिस्थितियों के प्रारम्भ में हिन्दी कथा साहित्य की प्रगतिशील परम्परा के प्रतिनिधि हस्ताक्षर भीष्म साहनी का जन्म 8 अगस्त सन् 1915 में वर्तमान पाकिस्तान स्थित रावलीपण्डी में हुआ । पिता श्री हरवंश लाल साहनी का कपड़ों की दलाली का व्यापार था । परिवार आर्य समाजी संस्कारों वाला था । उनकी शिक्षा अंग्रेज बल-राज साहनी के साथ आर्य समाजी संस्था से प्रारम्भ हुई । परिवारिक वातावरण भी आर्य समाजी नैतिक नियमों से संचालित था । आज्ञा पालन, अपने से बड़े भाई-बहन को जी कहकर पुकारना, उनका हुक्म मानना, सच बोलना,

अपशब्द मुँह से न निकालना, नियमित रूप से संध्योपासना करना आदि सभी इनमें आ जाते थे ।¹

भीष्म साहनी ने घर के संस्कारों को सम्बन्ध में लिखा है कि घर के संस्कार आर्य समाजी थे पर कट्टर पंथी नहीं ।² स्वयं के परिवार के कट्टर पंथी न होने के बावजूद उनके आस पास के वातावरण के प्रति उनके परिवार की मान्यताएँ ऐसी थीं जो कट्टर पंथी कही जा सकती हैं । जिस मुहल्ले में उनका घर था वहाँ की अधिकांश आबादी मुसलमानों की थी । मुसलमान पड़ोसियों के साथ उनके पिताजी के सम्बन्ध स्नेह पूर्ण तो थे, पर फिर भी मुसलमान बच्चों के साथ उन्हें खेलने नहीं दिया जाता था ।³ इसका कारण यह था कि पारिवारिक वातावरण आर्य समाजी था और उस समय आर्य समाजियों की आम मानसिकता यह थी कि मुसलमानों के प्रभाव के कारण हिन्दू समाज धरातल को जा रहा है आदि-आदि ।⁴

भीष्म साहनी बचपन में अक्सर बीमार रहा करते थे । बचपन बीमारी में छटपटाते असह वेदना के साथ व्यतीत होने के कारण वह स्वाभाव से दब्लू हीन भावना से ग्रसित हो गये । दब्लू एवं हीन भावना से ग्रसित होने का दूसरा कारण रहा है बड़े भाई बलराज से कमतर होने का एहसास । बलराज साहनी जो कि पढ़ने में तेज खिलदंड और रूप में भी अधिक थे, साहनी जी के अनुसार भाई बलराज "विलक्षण सा व्यक्ति नजर आने लगा जो टाकी खेल सकता है तीर कमान चला सकता है जो पौली

1- भीष्म साहनी: मेरे भाई बलराज, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया द्वारा प्रकाशित, सं० 1985, पृष्ठ 8

2- वही, पृष्ठ 9

3- भीष्म साहनी, अपनी बात, वाणी प्रकाशन दिल्ली द्वारा प्रकाशित, सं० 1990 पृष्ठ 11

4- भीष्म साहनी: मेरे भाई बलराज, पृष्ठ 6

धोती पहनकर गुरुकुल में जा सकता है जो गणित के सवाल करता है ।¹
भाई से कमतर होने की भावना के बावजूद भीष्म साहनी बलराज जी से बेहद लगाव रखते थे । एक प्रकार से बलराज साहनी की छवि उनके लिए 'हीरो' जैसी थी इस लिए उनको लेकर भीष्म साहनी के मन में ललक, उत्सुकता, आत्मीयता जैसी भावनाएँ हमेशा उनके जीवन को लेकर मधती रहती थीं ।

बलराज साहनी के अतिरिक्त घर में दो बहनें और नौकर तुलसी भी थे । बीमार माँ भीष्म को बहलाने के लिए शाम के झुटपुटे में कवित्त, गीत, कहानियाँ सुनातीं जिसमें गहरा अवसाद भरा रहता । इन गीत, कविता, कहानियों के अतिरिक्त साहनी जी अपनी साहित्यिक प्रेरणा के सम्बन्धमें निश्चित मत नहीं है कि बचपन में साहित्यिक प्रेरणा का कोई अन्य स्रोत रहा हो । अपनी पहली पुस्तक अष्टाध्यायी के सम्बन्ध में उनका कहना है कि न वो मेरी समझ में आयी न मेरे गुरु की । परन्तु अपरोक्ष रूप से बचपन की अनेक घटनाओं और पक्षों ने उनके साहित्यिक संवेदना के निमार्ण में सहायता की ।

बड़े भाई बलराज के कारण भीष्म साहनी की मानः स्थिति को 'झरोखे' उपन्यास में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । घर के नौकर तुलसी को तो 'झरोखे' से तुलसी की हैसियत से मुक्ति ही नहीं मिल पायी है । घर के नौकर तुलसी के जीवन की यथार्थ स्थितियाँ जैसे घर का झाड़ू-बरतन करते हुए, औषधालय में कम्पाउन्डर का कार्य करते हुए एवं संस्कृत के शुद्ध मन्त्रों का उच्चारण करते हुए तुलसी और 'झरोखे' के तुलसी की स्थितियों में कोई अन्तर नहीं है । आर्य समाजी वातावरण में पालित पोषित बालकों

1- राजेश्वर सक्सेना: प्रताप ठाकुर §स्व०§: भीष्म साहनी: व्यक्ति और रचना, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित सं० 1982, पृ० 43

की मानसिकता 'झासेछे' के तरुण के द्वारा स्पष्ट हो जाती हैं । तरुण वीर्य पात और स्वप्न दोष से आर्तकित होकर अपने यथार्थ से विमुख हो जाता है । वह किताबों से स्त्रियों के चित्र फाड़ने लगता है । इस तरह की कैशोर्य प्रवृत्ति के मूल में जीवन निषेध की वह अवधारण होती है जो धर्म नीति की छुट्टी पर जन्म लेती है । आर्य समाजी वसूलों में उसकी अधिकता थी जिससे साहनी जी परिचित थे । वह उनके बाल्य काल में रची बसी थी ।

गुरुकुल और घर के बाहर की दुनियाँ से परिचय में बड़े भाई बलराज ने अगुआई की । उन्हीं की पहल कदमी पर गुरुकुल छोड़कर स्कूल में प्रवेश मिला । स्कूल का जीवन घर के वातावरण से विपरीत एवं आजाद था । अनुभव क्षेत्र का दायरा बढ़ने लगा । उन दिनों की याद करते हुए साहनी जी ने लिखा है, "वे दिन खेल कूद और गहरी दोस्ती के दिन थे और मेरी भी अनेक गहरी दोस्तियाँ हुईं और इनमें से अनेक दोस्तियाँ गरीब लड़कों के साथ हुईं । पर उन दोस्तियों का किस्सा भी अपने आप में बड़ा अटपटा और दर्द नाक है ।" इन दोस्तियों के सम्बन्ध में उनके चार दोस्तों के नामों का उल्लेख कर देना आवश्यक है । चारों गरीब परिवार से सम्बन्धित थे, रोशन लाल, धर्म दत्त बरकत राम और हरवंश लाल, ये ऐसे फूल थे जो खिलने से पहले ही मुरझा गये । बाद में आर्थिक विसंगतियों से उपजी विडम्बनाएँ जो उनके साहित्य का महत्वपूर्ण अंग बनी कहीं न कहीं मित्रों-दोस्तों से जुड़ी मानसिकता के यथार्थ के रूप में आयीं ।

साहनी जी के बचपन के समानान्तर राष्ट्रीय आन्दोलनों का जोर था । उनकी बढ़ती उम्र और तीव्र होती संवेदना के साथ-साथ राष्ट्रीय

आन्दोलन के फलक को व्यापकता प्राप्त हो रही थी । यह वही जमाना था जब एक तरफ गांधी जी की अहिंसा की पुकार सारे हिन्दुस्तान में गूँज रही थी दूसरी तरफ भगत सिंह को फाँसी हो चुकी थी । भीष्म जी ने उस समय को याद करके लिखा है "कुरबानियों को सुन-सुनकर दिल बल्लियों उछलता था और गला रूँध-रूँध जाता था । यह किस्सा लड़कपन से शुरू हुआ और आजादी के दिनों तक चलता रहा । नेहरू जी आते तो चप्पल झाड़ उन्हें देख पाने के लिए भाग खड़ा होता । गांधी जी अनशन करते तो एक-एक दिन गिनता ।" ¹

भीष्म साहनी का पाश्चात्य सभ्यता से इन्हीं दिनों में ही सम्पर्क भी प्रारम्भ हुआ । छावनी वाले इलाके के नाच घर, सिनेमा उससे भी बढ़कर वहाँ के वातावरण में भारतीयों के लिए अपमान और अनादरण, सड़क पर बिना किसी कारण लातें लगा जाते अग्रेज, इस क्षोभ और गिड़गिड़ाहट के वातावरण का प्रभाव साहित्यिक प्रेरणा स्रोत एवं संवेदना निर्माण दोनों रूपों में पड़ा । इसकी पुष्टि उनके इस कथन से होती है कि, "इस पाश्चात्य परिवेश के कारण एक ओर मेरे लिए पाश्चात्य साहित्य और कला के दरवाजे खुले दूसरी ओर अपमान और अनादरण का भाव जो हृदय में हीनता का भाव जगाता था ।" ²

स्कूली शिक्षा पूरी करने के पश्चात कालेज में साहनी जी का सम्पर्क अग्रेजी के अध्यापक श्री जसवंत राय से हुआ । उनकी हर एक अदा, स्वभाव व्यक्तित्व जीवन शैली से वे बेहद प्रभावित हुए । साहित्यिक प्रेरणा स्रोत के रूप में श्री जसवंत राय के नाम का कर्मावेश अपने प्रत्येक इन्टरव्यू में उल्लेख

1- भीष्म साहनी: अपनी बात, पृष्ठ 13

2- वही, पृष्ठ 14

किया है । साहनी जी के धीरे-धीरे बढ़ते आत्म विश्वास एवं जीवन में बढ़ती सुरुचि पूर्णता श्री जसवंत राय के सम्पर्क का परिणाम है । उनके अतिरिक्त फुमेरी बहन सत्यवती मल्लिक एवं पुरुषार्थ वती भी अपने समय की जानी मानी साहित्यकार थीं, परन्तु उनके जीवन के अन्य पक्षों के साथ साहित्यिक पक्ष को भी प्रभावित करने वालों में सबसे महत्वपूर्ण व्यक्तित्व उनके बड़े भाई बलराज साहनी का रहा है ।

सन् 1933 में जिस वर्ष बलराज साहनी लाहौर में कालेज के अन्तिम वर्ष के छात्र थे भीष्म जी ने भी दाखिला लिया । लाहौर प्रवास काल के साथ उनके जीवन का नया युग प्रारम्भ हुआ । लाहौर में कालिज का वातावरण राष्ट्रीय आन्दोलनों की धार से कटा था, चारों तरफ अंग्रेजियत का बोल-बाला था । वहाँ के छात्र कालेज छोड़ने के बाद बड़े-बड़े सरकारी अफसर बनने के खवाब देखते थे । भीष्म जी के प्रवेश से पहले ही बलराज साहनी का गवर्नमेण्ट कालिज लाहौर के प्रति उत्साह कम हो गया था दृष्टि कुछ-कुछ आलोचनात्मक हो चुकी थी, वह कहने लगे थे कि, "यह कालिज समूचे प्रदेश के उत्कृष्ट लड़कों को खींच लाता है और उन्हें घृणित नौकर शाही में बदल देता है" । बलराज साहनी का झुकाव प्रगतिशील विचारों की तरफ होने लगा था । भीष्म जी भी इन विचारों से अपने को बचा ने सके । प्रारम्भ में तो कांग्रेस से जुड़े परन्तु बाद में पूर्ण रूप से प्रगतिशील विचार धारा को आत्म सात किया । लाहौर प्रवास काल तक उनका साहित्य सृजन भी छिट-पुट स्कूल एवं कालेज की पत्रिका तक ही सीमित था ।

लाहौर से घर वापस आने के पश्चात पहली कहानी 'हंस' में 'नीली' शीर्षक से प्रकाशित हुई जिसको लेकर वे बेहद उत्साहित थे । परन्तु यह उत्साह

बहुत दिनों तक स्थायी न रहा । एक-एक कर नयी-नयी समस्याओं से दो-चार होना पड़ा । शहर का माहौल बदला हुआ था । विश्व युद्ध के बादल घिरने लगे थे । देश की राजनीतिक हलचल भी तेज हो रही थी । दूसरी तरफ पिता के स्वप्न को साकार करने का समय आ गया था । व्यापार, साहित्य और देश, इस सब की भँवर में पड़कर नये-नये अनुभवों से साक्षात्कार करना पड़ रहा था ।

अपने पुराने अध्यापक श्री जसवंत राय से जीवन के इसी भाग में कुछ-कुछ मोह भंग प्रारम्भ हुआ जो आगे चलकर साहनी जी के प्रगतिशील विचारों को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ । इस सम्बन्ध में उनके जीवन की छोटी परन्तु महत्वपूर्ण घटना को देखा जा सकता है । एक चीनी रेस्त्रा में मालिक द्वारा चाय के लिए मनाकर जाने पर अपनी भावनाओं के बारे में लिखा है । "मुझे आग लग गयी । अपने ही शहर में हमारे साथ यह सुलूक हो, मुझे यह असह्य लगा । मैं उठ कर चीनी मालिक के पास जाने ही वाला था कि मेरे अध्यापक ने मुझे रोक दिया और मुझे पकड़कर बाहर ले गया ।

यह उसका रेस्त्रा है, हमारा नहीं, उसका अधिकार है किसे सर्व करे किसे न करे ।

मैं अपने अध्यापक के चेहरे की ओर देखता रह गया । इससे मुझे इस तर्क की आशा नहीं थी ।"

व्यापार में नित नये-नये अनुभवों का सामना करना पड़ रहा था । इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है "मैं व्यापार के लिए नाकारा साबित हो रहा था । दिन प्रति दिन मेरी छाती का बोझ बढ़ता जा रहा था ।

तरह-तरह के मानसिक गुंझल मेरे रास्ते के रोड़े बन रहे थे । उनमें से एक मेरा आदर्शवाद भी था ।¹ और व्यापार के बाजार में बेइमानी, जी हुज्जरी, रिश्वत का वो ल बाला था । घर लौटने के बाद किताबें ही कुछ सहारा देंतीं ।² साहनी जी का यही उत्साह उन्हें शक्ति प्रदान करता रहा ।

कुछ समय बाद देश व्यापी राष्ट्रीय आन्दोलन भी प्रारम्भ हो गया । समय की धारा के अनुसार साहनी जी इससे अछूते न रहे । इससे पहले ही साहनी जी गांधी से मिल चुके थे । खादी पहनना भी प्रारम्भ कर दिया था । लेकिन विश्व युद्ध की समाप्ति के साथ राष्ट्रीय आन्दोलन भी शान्त हो चुका था । उन्होंने कांग्रेस पार्टी ज्वायन कर ली । इस समय तक उनकी छुट-पुट रचनाएँ ही प्रकाशित हो रही थीं इनके साथ आनरेरी तौर पर अध्यापन का कार्य भी प्रारम्भ कर दिया था । उनके अनुभवों का दायरा बढ़ता हुआ उनकी सवेदनाओं को स्पीदित करता रहा ।

साहनी जी पर बड़े भाई बलराज का प्रभाव बचपन से था ही । बलराज साहनी अपने लंदन प्रवास के पश्चात जब भारत आये तो मार्क्सवादी चिन्तन के साथ । कांग्रेस में कार्य करने के साथ ही उनका चिन्तन अपरोक्ष रूप से प्रगतिशील विचार धारा से प्रभावित होने लगा था । बलराज जी का मार्क्स वादी चिन्तन एवं उसी समय पढ़ी गयी रजनी पाम दत्त की पुस्तक 'राइज ऑफ नेशनल शोशलिज्म' एवं अन्य पुस्तकों ने उन्हें नई दृष्टि प्रदान की । रजनी पाम दत्त की पुस्तक में यूरोप में उठने वाली फासिस्ट ताकतों का गहरा विवेचन था । युद्ध की विभीषिका पाम दत्त के विश्लेषणों को पग-पग

1- भीष्म साहनी: अपनी बात, पृष्ठ 23

2- वही, पृष्ठ 24

पर सही साबित कर रही थी। साहनी जी के एक सहयोगी अध्यापक कम्युनिस्ट कार्यकर्ता थे। उनकी दृष्टि भी सुलझी हुई थी। उनके अन्दर खास बात यह थी कि गरीबों के प्रति निष्ठा से निःस्वार्थ सेवा की भावना थी। इन सब ने साहनी जी को बेहद प्रभावित किया। परन्तु उन्हें ने इस विचार धारा को उग्रता की हद तक आत्मसात नहीं किया। इस विचार धारा के प्रति आग्रह होते हुए भी अपनी रचनाओं में इसे पूर्वाग्रह के आधार पर थोपने का प्रयास नहीं किया अपितु उन्हें स्वतन्त्र रूप से विकसित होने का अवसर दिया।

भीष्म साहनी की रचनाओं को प्रभावित करने वाली साम्प्रदायिक परिस्थितियाँ उनके जीवन के इसी काल से सम्बन्धित हैं। स्वतन्त्रता के पहले के वर्ष में कलकत्ता से उठी साम्प्रदायिकता की आग धीरे-धीरे पंजाब तक पहुँच गयी और उग्र रूप धारण कर लिया। भ्रंकर रूप से दंगे फ़साद प्रारम्भ हो गये। इन दंगों की समाप्ति के बाद रिलीफ़ कमेटी में कार्य करते हुए दंगे की अनेक वीभत्साओं से साक्षात्कार किया। उन दिनों की घटना को याद करते हुए लिखा है "मैं एक दिन उस कुँए के किनारे खड़ा था, जिसमें एक गाँव की स्त्रियाँ अपने छोटे-छोटे बच्चों को पेंक कूद मरी थीं। लाशें फूल कर सतह तक आ गयी थीं और कुँए के आस पास खड़े उनके पति और सम्बन्धी उन्हें पहचानने की कोशिश कर रहे थे.....। 'तमस' में घटना का पराग वर्णन है। इसके अतिरिक्त 'अमृत सर आ गया' 'निमित्त' इत्यादि कहानियाँ उनके इन्हीं दिनों के अनुभवों की देन हैं।

साम्प्रदायिक दंगों की अन्तिम परिणति भारत विभाजन के रूप में हुई आजादी मिलने वाले दिन से एक दिन पहले ही आजादी के जश्न में सम्मिलित होने साहनी जी दिल्ली पहुँच गये। हफ्ते-दस दिन बाद रावल-

1- भीष्म साहनी, अपनी बात, पृष्ठ 25

भविष्य के साहित्यकार जीवन की पृष्ठ भूमि के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । उद्दंडता ठहर सी गयी । चंचलता टाँगों पर चढ़े प्लास्टर के कारण जीवन में उत्पन्न रिक्तता में खो गयी । न वो अब छोड़े पर चढ़ सकते थे न हवेली के लॉन में क्रिकेट खेल सकते थे, एक छत से दूसरी छत पर भागते हुए आकाश में पतंगें उड़ाना स्वप्न की बातें हो गयीं । स्कूल में पड़े-पड़े बहन को छेड़ने में भला अब क्या मजा आता ? उन्हीं दिनों माँ से मिलने वाले विशेष लाड़-प्यार ने मासूम रजा के अन्दर माँ के प्रीति विशेष लगाव उत्पन्न कर दिया जिसकी उत्कृष्टता अद्यपरान्त उनके सम्पूर्ण साहित्य में देखी जा सकती है । बीमारी की हालत में उनके फिल्म देखने के शौक को पूरा करने का भी अवसर प्राप्त हुआ । दोस्तों, हवालियों-मवालों के साथ पालकी पर बैठ कर फिल्म देखने जाते । शायद बीमार मासूम का मन फिल्मों से बहल जाये सम्भवतः इसी कारण परिवार के बड़े बूढ़ों ने उन्हें फिल्म देखने से रोकने के बजाय बढ़ावा ही दिया । उनके फिल्मी जीवन के प्रेरण स्रोत के रूप में उनके बचपन के फिल्मी शौक ने अवश्य कहीं न कहीं पृष्ठ भूमि का कार्य किया ।

अपनी उदासी और सुनेपन को दूर करने में फिल्म इत्यादि से असफल हो अन्त में 'हशमत' या फिर अन्य उर्दू की पत्र पत्रिकाओं की शरण में जाना पड़ता । परिवार के घरेलू कार्यों को अली हुसेन साहब थे जिन्हें सब कल्लू काका कहा करते । उनका अन्य कार्यों के अतिरिक्त एक प्रिय कार्य था किस्सा गोई । कल्लू काका तिलस्में होशरूबा सुनाने बैठ जाते । धीरे-धीरे अन्य बच्चों का मन उकता जाता लेकिन मासूम रजा कभी नहीं थकते थे । यही इस तथ्य का उल्लेख कर देना आवश्यक है कि प्रेम चन्द्र भी बचपन में तिलस्में होशरूबा के दीवाने थे । बाद में मासूम रजा द्वारा किये गये शोध कार्य 'तिलस्में होशरूबा में वहजती अनासिर' के प्रेरणा स्रोत के रूप में

पिण्डी वापस आने का विचार था लेकिन विचार, विचार ही रह गया। अचानक पूरे परिवार से कट गये। बड़ी कीठनाइयों के बाद परिवार के अन्य सदस्य कश्मीर के रास्ते दिल्ली पहुँचे। दिल्ली में स्थायी ठिकाना बनाने हेतु लगभग तीन-चार साल का समय लग गया।

साहनी जी का साहित्यिक जीवन उनके दिल्ली में स्थायित्व के बाद प्रारम्भ हुआ। देवेन्द्र इस्सर के साथ कल्चरल फोरम नाम की साहित्यिक संस्था के निर्माण के साथ उनकी साहित्यिक प्रतिभा को प्रस्फुटित होने का अवसर प्राप्त हुआ। निमल वर्मा, राजकुमार कृष्ण बलदेव वैद, नरेश कुमार 'शाद', योगेश कुमार, आनन्द स्वरूप, हंस राज रहबर, जोय अन्सारी और श्याम मनोहर जोशी इत्यादि नये साहित्यकारों के साथ खुले वातावरण में विचारों के आदान-प्रदान ने साहनी जी की साहित्यिक प्रतिभा बढ़ाने में बड़ी मदद की। होने वाली गोष्ठियों में कभी-कभी अशक और नरेश मेहता जैसे स्थापित हो चुके साहित्यकार भी सम्मिलित हो जाते।

देश का समकालीन राजनीतिक माहौल उत्साह, आशाओं और प्रश्नों का था। ये प्रश्न देश, आर्थिक नीति, भाषा इत्यादि को लेकर थे। सब की निगाहें एक टक पीड़ित जवाहर लाल नेहरू के ऊपर टिकी हुई थीं। लेकिन गुजरते वक्त के साथ उत्साह कुछ ही समय बाद अवसाद में परिवर्तित होने लगा। स्वतन्त्रता आन्दोलन के दिनों की कांग्रेस की विशिष्ट मान्यताएँ धीरे-धीरे टूटने लगीं। जो कांग्रेसी कार्यकर्ता थर्डक्लास के डिब्बे में सफर किया करते थे उनके बीच सुख सुविधाओं की आपसी होड़ प्रारम्भ हो गयी। निष्ठावान अब भी थे लेकिन उन्हें बाहर धकेल दिया जाने लगा। सियासत में पैसे वालों का और तिकड़मियों का वर्चस्व स्थापित होना प्रारम्भ हो गया।

उस समय का साहित्यिक वातावरण भी संकृमण की स्थितियों से गुजर रहा था । 1953 में साहनी जी का कहानी संग्रह बड़ी कीठनाइयों के बाद पारिवारिक सम्बन्धों के आधार पर प्रकाशित हुआ । पत्रिका इत्यादि में पारिश्रमिक के रूप में छपने का सहजान ही प्राप्त होता था । सम्भवतः इस स्थिति से अधिकांश साहित्यकार संतुष्ट भी थे क्योंकि जब श्री पतनी ने पहली बार उजरत बीस रुपये की थी अधिकांश लेखक उससे अभिभूत हो उठे थे ।¹ मोहन राकेश ने इस सम्बन्ध में आवाज उठायी अन्यथा दूसरे युवा लेखकों का असंतोष व्यवस्था और नीतियों को लेकर था, प्रगतिशील विचार धारा वाले साहित्यकार इस दिशा में अगुआई कर रहे थे।

इन सब स्थितियों के बीच छुट-पुट अभिनय एवं निर्देशन तथा अध्यापन के साथ-साथ साहनी जी का लेखन कार्य निरन्तरता की दिशा में अग्रसर था, यद्यपि बड़े भाई बलराज बम्बई की फ़िल्मी दुनियाँ में अपने पैर जमा चुके थे, पर साहनी जी ने अपने ही सहारे को प्राथमिकता दी । कुछ दिनों बाद संघर्ष के दिन समाप्त होने लगे । पत्नी श्रीमती शीला साहनी की रीछ्यों में नौकरी लग गयी, स्वयं कालेज में स्थायी अध्यापक हो गए । अब उनके पास साहित्यिक गतिविधियों को और अधिक व्यापक करने का अवसर था । इन्हीं दिनों बाहर के अनेक साहित्यकार भी दिल्ली की तरफ आकृष्ट होने लगे थे । इसी बीच 'नयी कहानियाँ' के तीनों प्रवक्ता कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव और मोहन राकेश से साहनी जी की मुलाकात हुई ।

सन् 1957 में भारत सरकार की तरफ से सोवियत संघ में अनुवादक के रूप में चुनाव हो गया । 1963 तक के अपने सोवियत संघ प्रवास काल के दौरान उन्होंने महत्वपूर्ण पुराने एवं अनेक समकालीन लेखकों की पुस्तकों का

अनुवाद किया। अनुवाद कार्य ने जहाँ एक तरफ उनकी कला को निखारने एवं संवारने में सहायता की वहीं दूसरी तरफ सोवियत साहित्य एवं जीवन के सम्पर्क में आने के पश्चात उनकी मार्क्सवादी विचार दृष्टि और अधिक साफ हुई।

सोवित संघ प्रवास के बाद भारत वापस आने पर साहनी जी अध्यापन के साथ-साथ लेखन कार्य में व्यस्त हो गये। अब तक उनका लेखन व्यवस्थित हो चुका था। दूसरी तरफ 'नयी कहानियाँ' की प्रगति गति पकड़ चुकी थी कि अचानक सम्पादक के पद से कमलेश्वर ने त्याग पत्र दे दिया। कमलेश्वर के अलावा राजेन्द्र यादव और राकेश ही इस पत्रिका के सम्पादक हो सकते थे। वेदोंनो दिल्ली में ही थे। पर 'नयी कहानियाँ' की यह त्रयी अपनी ख्याति के शिखर पर थी और कमलेश्वर के त्यागपत्र देने के बाद यह किसी तरह संभव नहीं था कि दोनों, राकेश या यादव इस पत्रिका का सम्पादक होना स्वीकार कर लेते। पर तमाम आशंकाओं का अन्त तब हो गया जब भीष्म जी 'नयी कहानियाँ' के सम्पादक हो गये। दो साल तक निरन्तर चलती बढ़ती 'नयी कहानियाँ' उनके सम्पादक काल में नये-नये प्रतिभाशाली लोगों की उभरने और चर्चित कहानियों के लिए प्रसिद्ध भी हुई। दो साल तक स्तरीय रूप में पाठकों के सामने आती रही। 'नयी कहानियाँ' के सम्पादन काल के दौरान उनका तीसरा कहानी संग्रह 'भटकती राख' प्रकाशित हुआ और 1967 में पहला उपन्यास 'भरोखे'। कुछ देर में ही सही धीरे-धीरे साहनी जी की प्रतिभा निखरती ही गयी। लेखन कार्य गति पकड़ता हुआ 'भाग्य रेखा' के प्रकाशन से प्रारम्भ होकर अनेक उपन्यास नाटकों एवं कहानी संग्रहों की यात्रा करता हुआ अब तक अनवरत

जारी है । दो फिल्मों में अभिनय भी कर चुके हैं । 'तमस' पर सन् 1975 में साहित्य ऐकैडमी पुरस्कार के साथ साहित्य शिरोमणि पुरस्कार, अफ्रो-एशियायी लेखक संघ का लोटस पुरस्कार एवं अन्य पुरस्कारों से साहनी जी को सम्मानित किया जा चुका है ।

राही मासूम रजा -

सन् 1927 का वर्ष जब कि राष्ट्रीय आन्दोलन अपनी तीव्रता पर था, दूसरी तरफ साम्प्रदायिकता की अग्नि पूर्ण रूप से प्रज्वलित हो चुकी थी । ऐसी विषम परिस्थितियों में जिला गाजीपुर उत्तर प्रदेश के 'बुध ही' नामक गाँव में सैयदमासूम रजा का जन्म हुआ । बुधही मासूम रजा के मातृ पक्ष का गाँव था । दादहाल के गाँव का नाम गंगौली है जो कि गाजीपुर शहर से लगभग 12 किमी० की दूरी पर स्थित है, वास्तव में मासूम रजा के दादा आजमगढ़ स्थित 'ठेकमा बिजौली' नामक गाँव के निवासी थे । दादी गंगौली के राजा मुनीर हसन की बहन थीं । अपने 'दुहाजू' पति यानी कि मासूमकेदा के साथ गंगौली में बस गयी । तदोपरान्त धीरे-धीरे परिवार में गंगौली का रंग रचता बसता गया । मासूम रजा की निगाहें गंगौली में ही खुली ठेकमा बिजौली से कोई सम्बन्ध न रहा ।

मासूम रजा के पिता श्री बशीर हसन आब्दी गाजीपुर जिला कचहरी के प्रसिद्ध वकील थे इस लिए पूरे परिवार का रहन-सहन और शिक्षा दीक्षावही हुई । परन्तु मुहर्रम और ईद के द्वारा आब्दी परिवार मजबूती के साथ गंगौली से जुड़ा हुआ था । श्री बशीर हसन आब्दी के वर्षों तक गाजीपुर में एक ख्याति प्राप्त अधिवक्ता के रूप में कार्य करने के कारण परिवार में सुख वैभव की कोई कमी नहीं थी । इसलिए मासूम रजा का बचपन निर्द्वन्द्व व्यतीत हुआ । परिवार भी भरा पूरा था । बड़े भाई मूनिस रजा के अतिरिक्त दो

भाई एवं दो बहनें थीं । घर की बड़ी बूढ़ियों के साथ नौकर इत्यादि की भी कोई कमी नहीं थी । साईस मधुरा की सरपरस्ती में छोड़े मोती की सवारी, हवेली के लॉन में बड़े भाई के साथ क्रिकेट एवं पतंग बाजी इत्यादि खेल, खाते-पीते घराने के बच्चों की तरह मासूम रजा के बचपन के अभिन्न अंग थे । बाल्यकाल के जीवन में चंचलता अपेक्षाकृत अधिक थी इसलिए घर के बड़े-बूढ़ों के साथ-साथ के भाई बहनों को भी अपनी छेड़-छाड़ के द्वारा तंग करते रहते थे । मुख्य रूप से छोटी बहन अफसरानी बेगम को मासूम 'सड़ीबू' कहा करते क्योंकि उनके चेहरे पर अधिकतर फोड़े फुन्सी रहता करते थे । सड़ी बू मासूम से अक्सर पिट जातीं और मासूम अपनी पिटायी के डर से भाग खड़े होते ।¹

पारिवारिक परम्परा के अनुसार पहले बिस्मिल्लाह के साथ मासूम की शिक्षा-दीक्षा प्रारम्भ हुई । प्रारम्भ में पढ़ाई-लिखायी में को खास दिल-चस्पी नहीं थी इस लिए अपने मौलवी मुनव्वर साहब की पिटायी से बचने के लिए उन्हें अक्सर अपने जेब खर्च की इकन्नी देदेनी पड़ती । अभी मासूम रजा की शिक्षा सुचारू रूप से प्रारम्भ भी नहीं हुई थी कि परिवार के सदस्यों ने यह महसूस करना शुरू किया कि मासूम लंगड़ाता है । प्रारम्भ में लगड़ेपन को उनकी उदंडता समझकर नजर अन्दाज कर दिया गया । लेकिन कुछ दिनों के पश्चात स्थिति की गम्भीरता को ध्यान में रखकर जब परीक्षण पर परीक्षण प्रारम्भ हुआ तो पता चला कि मासूम रजा को बोन टी० बी० है ।

टी० बी० की बीमारी ने मासूम रजा के जीवन को एक नया मोड़ प्रदान किया । साथ ही उनकी संवेदनाओं को गहराई तक छेड़ते हुए उनके

1- सैयद जुहेर अहमद जैदी: उपन्यास कार राही मासूम रजा: कृतित्व एवं उपलब्धियाँ ॥अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध॥, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, पृष्ठ 4

उनके द्वारा बचपन में तिलस्में होशरूबा के किस्से को बार-बार सुनने की उत्कंठा को रेखांकित किया जा सकता है ।

अलीगढ़ विश्वविद्यालय में प्रवेश से पहले मासूम रजा ने किसी भी शिक्षा-संस्था से औपचारिक रूप में शिक्षा नहीं प्राप्त की । बीमारी के कारण टांगें पहले ही टेढ़ी हो चुकी थीं । डाक्टरों ने निरन्तर इलाज की सलाह दी थी इस लिए प्राइवेट परीक्षाओं के द्वारा धीरे-धीरे शिक्षा का क्रम आगे बढ़ता रहा । साथ ही उनके लिए गाज़ीपुर में एक को-आप-रेटिव स्टोर खुलवा दिया गया । पर अब तक उनके आगामी जीवन की भूमिका के रूप में साहित्य ने अपनी जड़ों के लिए जमीन तैयार कर ली थी अतः दुकान में मन लगाना आसान कार्य नहीं था ।

मासूम रजा की शादी के साथ जीवन में उथल-पुथल एवं परिवर्तनों का एक नया दौर प्रारम्भ हुआ । साहित्य का बीज मासूम रजा के मस्तिष्क में पहले ही अपना स्थान बना चुका था लेकिन उनकी वैचारिक दृढ़ता की दिशा प्रदान करने में शादी एवं उससे उत्पन्न स्थितियों का महत्वपूर्ण योगदान है । उनकी शादी उत्तर प्रदेश के जिला फैजाबाद की टांडा तहसील में स्थित गांव कलौपुर के एक खानदानी व्यक्ति जो कि पेशे से पोस्टमास्टर थे, की पुत्री मेहरबानों से सम्पन्न हुई । मेहरबानों एक पारम्परिक रूढ़िवादी परिवार से आयी थी, रंग-रूम भी औसत था जब कि मासूम रजा का घर पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क में आने के कारण बहुत हद तक रूढ़ि मुक्ति एवं आधुनिक विचार वाला था । घर के स्वच्छन्द एवं स्वतन्त्र वातावरण का अनुमान इस बात से ही लगाया है कि उनके घर में बड़े भाई मूनिस रजा प्रगतिशील विचार धारा के समर्थक थे पिता श्री वशीर हसन आब्दी कांग्रेसी थे ।

तीन साल तक मेहरबानों ने मासूम रजा के परिवार में अपना जीवन बड़ी कठिनाइयों के बीच व्यतीत किया। मासूम रजा के साथ ही उन्होंने ग्राइवेट हाई स्कूल की परीक्षा पास की पर उनको वहाँ प्यारी आखें भी पसंद नहीं किया गया। इन तीन सालों में मेहरबानों जिस पीड़ा को झेलती रही, जिस घुटन में जीती रही उसका उदाहरण देना मुश्किल है। सैयद जुहेर अहमद जैदी ने अपने अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध में लिखा है कि, "एक सूत्र के अनुसार मासूम अत्यधिक क्रोध में आकर उस अबला को खूब-खूब पीटा करते थे।"¹

शादी के पहले ही उन पर बड़े भाई मुनिस रजा के प्रभावों के कारण प्रगतिशील विचार धारा का रंग चढ़ चुका था ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि गाज़ीपुर शहर मेयर के चुनाव में उन्होंने कांग्रेस पार्टी के उम्मीदवार अपने पिता के प्रतिद्वन्द्वी साम्यवादी उम्मीदवार श्री बब्बर राम का समर्थन किया। अतः उनका अपनी पत्नी मेहरबानों के साथ किये गये व्यवहार को देखकर आश्चर्य होता है। अब प्रश्न यह उठता है कि मासूम रजा के आम आदमी तक पहुँचाने वाली प्रगतिशील विचार धारा को अपनाया। कमजोर वर्ग के हितों का समर्थन करने वाले साम्यवादी श्री बब्बर राम का समर्थन चुनावों में अपने पिता के विरुद्ध किया। फिर अपनी पत्नी के साथ इतना अत्याचार क्यों किया जबकि महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि "बाद में श्रीमती मेहर बानों ने उच्च शिक्षा प्राप्त की और इलाहाबाद में सन् 1950 से 1953 तक कम्युनिस्ट पार्टी में कामरेड की हैसियत से कार्य करती रहीं।"²

1- सैयद जुहेर अहमद जैदी: उपन्यासकार राही मासूम रजा: कृतित्व एवं पृष्ठ 10

2- वही, पृष्ठ 10

इस सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि जिन्दगी के दस वर्ष स्वच्छन्दता से व्यतीत करने वाले मासूम की स्वतन्त्रता जब अचानक छिन गयी । वो घर में बँध गये तो उनके अन्दर की छूटन चिड़चिड़ेपन की शकल अख्त्यार करके मानसिक विकृति में बदल गयी । उनके अनेक उपन्यासों , सम्भवतः यही प्रभाव कभी योनि तो कभी अन्य विकृतियों के रूप में चित्रित हुआ है ।

जीवन के छुट-पुट इन अधरे पक्षों एवं दुखद घटनाओं के अतिरिक्त उनके बचपन से ही उनकी विरोधी प्रवृत्तियों का स्वर सकारात्मक रहा है। उनकी विरोधी प्रकृति बड़े भाई का सहारा पाकर प्रगतिशील विचार धारा के माध्यम से समाज के निम्न वर्ग को स्वर प्रदान करती हुई साहित्य के माध्यम से मुखरित हुई ।

मासूम रजा का बचपन विशिष्ट सामाजिक मान्यताओं, परम्पराओं के बीच व्यतीत हुआ जहाँ सलाम और आदाब 'खासिस' के आधार पर आधारित था परन्तु इन रूढ़ियों को तोड़ने का प्रण मासूम ने जैसे बचपन से ही कर लिया था । धर्म और रोजी रोटी-रोजी के आपसी सम्बन्धों की समझ सम्भवतः उन्हें बचपन से ही हो गयी थी । उनकी कुरान शरीफ खत्म हो चुकी थी । दुहरा तिहरा रहे थे । रमजान के महीने में एक दिन जब वो रोजे से थे, बीच में ही मौलाना वसी मुहम्मद {अपने उस्ताद} के पास पहुँचे और तैश में आकर बोले "मौलवी साहब अब जो रोजा रखा सो रख लिया, पर अब नाहि रखउं.....। मौलाना चौक उठे: ऐसा क्यों ?" मासूम ने उत्तर दिया सुनत हूँ कि अल्ला सबका रोटी देत है फिर गरीब लोग काहे भुक्खन मरत हैं ।" ¹ मासूम का बचपन जहाँ बीता वहाँ राकी

1- सैयद जुहेर अहमद जैदी, उपन्यासकार राही मासूम रजा : कृतित्व एवं उपलब्धियाँ {अप्रकाशित शोध प्रबन्ध}, पृष्ठ 12

जुलाहों और सैयदों में अन्तर तो था ही था, उत्तर पट्टी और दक्खिन पट्टी के सैयदों में भी फर्क था । अहीर और चमारों की बस्तियाँ गाँव से दूर थीं । मीर साहबानों के सामने सब निम्न थे, ऐसी दोनों पक्षों की धारण थी । मीर साहबानों के बच्चों को सख्त हिदायत थी कि नीच समझे जाने वाले वर्ग के बच्चों के साथ खेलना तो क्या उनके साथ बातचीत भी नहीं करना चाहिए, परन्तु मासूम ने कबड्डी का खेल उनके साथ खेलते हुए पहली बार इस परम्परा को क्रान्तिकारी ढंग से तोड़ा ।¹

धर्म सम्बन्धी मान्यताओं के प्रति मासूम रजा के मन में बचपन से ही अनेक सवाल उठने लगे थे परन्तु आस्था के कंगूरों पर उसका दिया अवश्य जलता दिखाई देता रहा । इस लिए मुहर्रम नहीं बल्कि 'हुसैन' उनकी आस्था के प्रतीक रहे हैं । इमाम हुसैन उनके नेता रहे हैं ।²

मासूम रजा के जीवन में संघर्ष और प्रतिद्वन्द्वता की भावना बचपन से ही विद्यमान थी । यह भावना बाद में उनके साहित्य में अनेक कोणों से व्यक्त हुई । पाँच की मजलिस में बेहोश होने के लिए अपने प्रतिद्वन्दी फुटू को छुरा भोंक देने तक को तैयार मासूम की 'आधा गाँव' में अपने उद्देश्य के प्रति तत्परता एवं प्रतिद्वन्द्वता की भावना मासूम के गाजीपुर से आने के बाद फुटू के पास मिलने जाने वाले प्रकरण में अत्यन्त तीव्रता से व्यक्त हुई है ।

"पाँच की मजलिस में हम बेहोश होंगे ।" मैंने कहा ।

"तू हूँ हो लिहो ।" फुटू ने कहा

1- आधा गाँव, डॉ० राही मासूम रजा, राज कमल प्रकाशन प्रा० लि० नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, पेपर बैक संस्करण 1989 पृष्ठ 27

2- सैयद जुहेर हसन जैदी: उपन्यासकार राही मासूम रजा: कृतित्व एवं उपलब्धियाँ ॥अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध॥ पृष्ठ 16

"नह..... मैंने गरदन झटकी, "एह साल खाली हम बहोश होगे, तू पर साल हो लिहो !"

अब एमाम हुसैन कउनो बशीर भाई के नौकर त हैं ना.....'
फुटू उखड़ गया ।

मेरे हाथ में एक पत्थर था । मैंने खींच मारा । फुटू चीखकर बैठ गया । मैं भाग खड़ा हुआ, मेरा ख्याल था कि मैंने फुटू को मार डाला है ।"। मासूम रजा की उद्देश्य के लिए कुछ भी कर गुजरने की भावना उनके जीवन की हर रूकावटों को तोड़ती हुई सफलता की ऊँचाइयों पर ले गयी।

सन् 1948 तक मासूम रजा 'राही' उपनाम से उर्दू शायरी में प्रवेश पा चुके थे । धीरे-धीरे उनकी प्रतिभा से डा० एजाज हुसैन जैसे विद्वान भी प्रभावित होने लगे । उनकी साहित्यिक गतिविधियों का क्षेत्र विस्तृत होने लगा । एक-एक करके डा० अजमल अजमली श्री मुजाविर हुसैन §इब्ने सईद§ श्री जमाल रिज़वी §शकील जमाली§ मसूद अखतर जमाल, खामोश गाजीपुरी, वामिक जौनपुरी, तेग इलाहाबादी, असरार नावी जैसे नवोदित शायरों के साथ-साथ बलवन्त सिंह और फिराक गोरखपुरी जैसे स्थापित लोगों से उनका सम्पर्क होने लगा । इन मिलने जुलने वाले अधिकांश साहित्यकारों की रुझान प्रगतिशील विचारों के प्रति थी । राही मासूम रजा का प्रगतिशील विचार धारा से पहले ही सम्बन्ध था, फलतः इन लोगों के सम्पर्क में आने के पश्चात उनके विचारों को और अधिक बल प्राप्त हुआ । स्वाभाविक रूप से उनकी दृष्टि भी साफ हुई । सब लोगों ने डा० एजाज हुसैन के संरक्षण में मिलकर 'नकहत' क्लब की स्थापना किया । इसके गोरखपुर में होने वाले पहले अधि-

वेशन के साथ ही नियमित रूप से राही ने इसकी गीतिविधियों में हिस्सा लेना प्रारम्भ किया । पटना के सम्मेलन तक राही मझ चुके थे । आजम गढ़ का सम्मेलन होते-होते उनकी शायरी प्रसिद्धि के शिखर को छूने लगी थी । इसी बीच कथा साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने उर्दू के उपन्यास 'मुहब्बत के सिवा' के साथ प्रवेश किया पर वो एक रोमानी उपन्यास साबित हुआ । शायरी के समानान्तर मुहब्बत के सिवा की तर्ज पर उन्होंने लगभग तीस उपन्यासों की रचना की । उपन्यास कार के रूप में उन्होंने शाहिद अखतर नाम अपनाया ।

राही का इलाहाबाद में प्रगतिशील साहित्यकार वर्ग से जुड़ना स्वाभाविक था क्योंकि साम्यवादी विचार धारा का प्रभाव उन पर गाज़ीपुर में ही अपना असर डाल चुका था, परन्तु गैर प्रगतिवादियों से भी उन्हें कोई परहेज नहीं था । इलाहाबाद का तत्कालीन साहित्यिक संसार प्रगतिवादियों के अतिरिक्त कांग्रेसी महासभाई इत्यादि सभी विचारधारा के साहित्यकारों का गढ़ था 'परिमल' नामक संस्था से बच्चन एवं धर्मवीर भारती इत्यादि हिन्दी कवि सक्रिय थे । प्रत्येक विचार धारा के साहित्यकारों एवं संस्थाओं से सम्पर्क में आने के कारण उन्हें एक विस्तृत साहित्यिक फ़्लक मिला, जहाँ उनकी प्रतिभा प्रस्फुटित हुई । 'हिन्दोस्तों की मुकद्दस जमी, जैसे मेले में तन्हा हो' नाजनी नज़म ने पहली बार उनकी इलाहाबाद के बाहर के साहित्यकारों के बीच प्रसिद्धि का कारण बनी । शाहिद अखतर इन गीतिविधियों के बीच सक्रिय रहा पर 'राही' को प्रभावित न कर सका ।

डॉ० एज़ाज हुसैन के सम्पादकत्व में निकलने वाली पत्रिका 'कारवाँ' में उनकी नज़में और लेख प्रकाशित होते रहे । 'फ़साना' दिल्ली से प्रकाशित होती थी उसमें भी राही का प्रकाशन लगभग नियमित था ।

राही मासूम रजा के तेवर बचपन से ही तेज थे यही तेजी उनके साहित्यिक जीवन में स्पष्ट बयानी, दो दूक जबाब की प्रवृत्ति के रूप में

और भी अधिक मुखरित हुई । यह प्रवृत्ति उनके लेखन में स्थान-स्थान पर लक्षित की जा सकती है । उपन्यासों में तो गालियों की हद तक । लेकिन इस प्रवृत्ति में कोई पूर्वाग्रह अथवा निजी दुश्मनी जैसी कोई बात नहीं है । अपितु यहाँ उनकी साहित्यिक इमानदारी की भावना कार्यरत होती है । अजमल अजमली की नज़्म 'काफी हाउस की वापसी', जिसमें युवकों से अह्वान किया गया था कि उन हाथों से शासन हथिया लो जो अंग्रेजी साम्राज्यवाद के दूसरे रूप के हाथों में पहुँच गया चाहे इसके लिए तुम्हें हिंसा का मार्ग ही क्यों न अपनाना पड़े, बहुत चर्चित हुई । अजमली के इन विचारों ने उत्तेजना सी पैला दी । लेकिन राही को उनकी दृष्टि पसन्द न आयी । उनका विचार था, "हिंसा से समस्या का हल नहीं निकल सकता । इससे नयी नस्ल नात्सीवाद की तरफ बढ़ जायेगी । आतंक और भय में भीगे आक्रोश का प्रदर्शन व्यक्ति को यथार्थवादिता से वंचित कर दिया करता है।" । उन्होंने शाहराह में नज़्म की धिज्जियाँ उखाड़ कर रख दी । जब कि अजमली उनके प्रारम्भिक एवं घनिष्ट मित्रों में से एक थे । बाद में भी उनकी मित्रता पूर्वतः कायम रही । उसमें कोई अन्तर नहीं आया ।

राही मासूम रजा के जीवन का यह वह काल था जब भारत का विभाजन तो हो चुका था, लेकिन उसका प्रभाव अब तक था । सामाजिक विघटन, साम्प्रदायिकता की सड़ांध अब भी वातावरण में बाकी थी । लेकिन इस विघटन और सड़ांध का प्रभाव गंगा की गोद में पलबढ़ कर बड़े हुए राही को प्रभावित नहीं कर पाया, फिर भी वो कहीं न कहीं से टूटने लगे थे । टूटने का कारण भी अपनी के बीच ही अजनबीपन का सहसास पैदा होना ।

1- सैयद जुहेर हसन जैदी : उपन्यासकार राही मासूम रजा : कृतित्व एवं उपलब्धियाँ पृष्ठ 20

साहित्यिक गतिविधियों के बीच ही राही ने उर्दू में बी० ए० के समक्ष परीक्षा पास कर ली थी । देश विभाजन के कारण डा० मुस्तफा जिनके यहाँ वह रहते थे भारत छोड़कर पाकिस्तान चले गये जिसके कारण उनका मन इलाहाबाद से उचाट हो गया। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में उनके बड़े भाई मूनिस रजा और दो छोटे भाई पहले से ही थे । मूनिस रजा की प्रेरणा से उन्होंने ने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में एम० ए० उर्दू में प्रवेश ले लिया । एम० ए० में प्रवेश से पहले ही उनका 'रक्सेमय', 'मौजे सबा', 'नया साल', 'अजनवी शहर अजनवी रास्ते' इत्यादि काव्य संग्रह उर्दू में प्रकाशित हो चुका था ।

जिस काल में अलीगढ़ में राही मासूम रजा आये वह समय आली-गढ़ की साहित्यिक गतिविधियों के लिए महत्त्व पूर्ण रहा है । अनेक लेखक एवं शायरों की गतिविधियाँ प्रगतिशील झंडे के तले सक्रिय थीं । राही कोयहाँ मार्ग ढूँढ़ने में कोई कीठनाई नहीं हुई । दूसरी तरफ 'उर्दू-ए-मुअल्ला' नामक कैम्प भी था जिसके संचालक आले अहमद सुरूर एवं शहाब जैसे साहित्यकार थे।

अलीगढ़ आने से पहले ही राही के पास अपना एक निश्चित दृष्टि-कोण था । बचपन से ही उनके अन्दर 'इगो' की भावना भी विद्यमान थी, यहाँ के वातावरण ने उसे और अधिक पलने बैठने का अवसर प्रदान किया । इसलिए उन्हें अकेले पन एवं लोगों से अलगाव का एहसास होता था -

जिसको देखिए

जिससे मिलिए

औरों जैसा लगता है ।

इस बस्ती में,

जैसे किसी की अपनी कोई पहचान नहीं ।

अलीगढ़ में राही को अपने से सबको कमतर समझने का कारण भी था । जब तक साहित्यकार में प्रतिस्पर्धा की भावना हो उसका साहित्य तभी तक जीवित रह सकता है, जब वह ऐसे नये सवाल लेकर दूसरे साहित्यकार के समक्ष आये जिनके जवाब उनके पास न हो लेकिन वे सवाल साहित्य को झिझोड़ने की क्षमता रखते हों । राही नये तेवर और नये सवालों के साथ साहित्य को झिझोड़ भी रहे थे ।

परम्परा के जुड़ाव के साथ विद्रोह की भावना भी इनके इगो के कारणों में से थी । इस दृष्टि से अलीगढ़ की साहित्य मंडली भिन्न थी । वे लोग बाहर की दुनियाँ में झाँकना तो चाहते थे मगर जीना नहीं चाहते थे । अलीगढ़ विश्वविद्यालय के परिसर में जीने वाले साहित्यकारों के साथ यह विडम्बना भी जुड़ी रही है कि वे अपने ऊपर फैले हुए आक्रोश को ही सम्पूर्ण मानकर जीने के अभ्यस्त हो जाते हैं । उसी के साथ 'महान' शब्द का पूर्ण प्रत्यय लगाकर आस्वस्थ हो जाते हैं । बाहर निकल कर जीना नहीं चाहते न ही उसे मान्यता देते हैं । जब कि राही इस भावना से मुक्त थे इसीलिए न तो वह विचारों की सीमाओं में सीमित रहे, न ही भाषा के बन्धनों में उलझे रहे । बदलते हुए परिवेश को वो भली भाँति समझ गये थे । काव्य संग्रह 'अजनबी शहर अजनबी रास्ते' के मुख पृष्ठ पर उन्होंने लिखा है -

"टिंकू और नीलू के नाम शायद तुम इस रसमुलखत से नावाकफ रह जाओ जिसमें तुम्हारा अम्मू अपने शेर लिखता है और शायद तुम्हारे अम्मू को वह जबान कभी पूरी तरह न आ सके जो तुम्हारी जबान होने वाली है मगर मैं एक रसमुलखत के लिए तुम्हें नहीं छोड़ सकता । क्या कोई दूसरा रास्ता नहीं कि हम लोग एक दूसरे के लिए अजनबी न हो पाएँ ?"।

1- राही मासूम रजा, अजनबी शहर अजनबी रास्ते, सईद पब्लिकेशन
इलाहाबाद, समर्पण पृष्ठ

फिर राही रास्ते की खोज में लग गये । भाषिक सीमाओं तो तोड़ती हुई राही की खोजी प्रवृत्ति उन्हें कला के एक दूसरे क्षेत्र फिल्म तक घसीट ले गयी ।

फिल्मी के कीटाणु राही के अन्दर बचपन से पलने लगे थे । अलीगढ़ में एम० ए० के बाद शोध कार्य में लग गये परन्तु उनका बहुमुखी व्यक्तित्व सक्रिय रहा । साहित्यिक गतिविधियों के अतिरिक्त राही विश्वविद्यालय के नाट्य मंच से भी कुछ दिन तक जुड़े रहे । उनके निर्देशन में गुंगी जिन्दगी नामक नाटक मंचित भी किया गया । नाटक की स्क्रिप्ट को राही ने लिखा, इस बात को लेकर उनके समकालीनों में मतभेद है, पर डा० शैलेश जैदी और कमर रईस इस सम्बन्ध में एक मत हैं कि उसे राही ने ही लिखा । राही के द्वारा लिखा नाटक 'एक पैसे का सवाल है बाबा' भी उस जमाने में अत्यधिक चर्चित हुआ । अलीगढ़ प्रवास काल में ही उनका सम्पर्क प्रसिद्ध अभिनेता भारत भूषण के भाई रमेश चन्द्र से रहा । उनके साथ राही सन् 1963 में बम्बई भी जा चुके थे ।

राही के फिल्मों के प्रति लगाव की पृष्ठ भूमि के रूप में उनकी रंगमंचीय सक्रियता एवं रमेश चन्द्र के सम्पर्क ने कार्य किया दूसरी तरफ़ उनके निजी जीवन की उथल पुथल ने भी उन्हें फिल्मों की तरफ जाने के लिए मजबूर किया ।

अलीगढ़ में राही को एक शायर के रूप में लोक प्रियता तो मिल ही चुकी थी किन्तु 'आधा गाँव' की लोक प्रियता ने उनके जीवन में एक नयी हलचल उत्पन्न कर दी । यह उपन्यास नागरी लिपि में लिखा गया था । पहले के उपन्यासों के लिए अपनाए गये नाम को छोड़कर इस उपन्यास पर लेखक के नाम के स्थान पर राही मासूम लिखा गया । इसकी रचना 1964 ई० में हुई । जैसी कि अलीगढ़ की परम्परा रही है, लोक प्रियता के बढ़ते चरण

के साथ यदि व्यक्तित्व भी आकर्षक हो तो उस व्यक्ति को तरह-तरह के स्कैंडलों से जोड़ दिया जाता है । राही के साथ भी यही हुआ । कहा जाता है कि राही का एक लड़की से गहरा लगाव हो गया था परन्तु हाथ लगी असफलता । कुछ दिनों के लिए वो स्कान्तिप्रिय भी हो गये पर उसका प्रभाव अधिक दिनों तक नहीं रहा ।

शोध समाप्त करने के बाद राही उर्दू विभाग में प्रवक्ता हो गये । कुछ ही दिनों बाद उनका सम्पर्क एक अन्य महिला श्रीमती नैयर से हो गया । दोनों लोगों ने मिलकर दिल्ली जाकर शादी कर ली । इस विवाह के कारण ही उनकी नौकरी छूट गयी । उनके स्थान पर एक अन्य शोधार्थी श्री अतीक अहमद सिद्दीकी की नियुक्ति कर दी गयी । राही का दिल टूट गया । दिल्ली चले गये । दिल्ली में उन्हें आकाशवाणी से नौकरी का निमन्त्रण मिला । आकाश वाणी की नौकरी अस्वीकार करके बम्बई में जा सिनेमा संसार में भाग्य अजमाने के लिए रुख किया । बम्बई के फिल्मी जीवन के संघर्ष में लगे राही के उपन्यास कार संघर्ष करता हुआ उपन्यास यात्रा के पड़ावों को तैय करता रहा ।

:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:

चतुर्थ अध्याय

:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:

‘तमस’ और ‘आधा गाँव’: देश विभाजन की त्रासदी में चीखता झुलसता यथार्थ

=====

साहित्यकार का यह कर्तव्य होता है कि वह रौंदी जाती मानव सभ्यता को शब्द बद्ध करे । इतिहास भी साक्षी है कि साहित्यकारों ने राष्ट्र के संक्रमणकाल से प्रभाव ग्रहण करके अनेक श्रेष्ठ रचनाएँ दी हैं । भारत विभाजन जो कि लगभग एक शताब्दी से स्वार्थी एवं कट्टरवादी शक्तियों की हो रही बढ़ोत्तरी का नतीजा था, विश्व इतिहास में कर्तव्य, अत्याचार बर्बरता तथा विशाल पैमाने पर आबादी के स्थानान्तरण की घटनाओं के लिए अतुलनीय है । इसकी त्रासदी भरी खौफ़ नाख स्थितियों से भारत के अन्य भाषा भाषी साहित्यकारों के साथ-साथ हिन्दी जगत के अनेक साहित्यकारों ने सीधा साक्षात्कार किया है, या फिर कहीं-न-कहीं प्रभावित हुए हैं । फलस्वरूप उस दौर की हिन्दी साहित्य की शायद ही कोई ऐसी विधा होगी जिस पर विभाजन का परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से प्रभाव न पड़ा हो। बाद के दशकों में भी विभाजन कालीन स्थितियों-परिस्थितियों के विवेचन-विश्लेषण के प्रश्न से सम्बन्धित अनेक रचनाकारों की कृतियाँ समय-समय पर आती रही हैं ।

साम्प्रदायिक सद्भाव के प्रश्न को लेकर, प्रेमचन्द और उनके समकालीन साहित्यकारों ने साम्प्रदायिकता के पीछे कार्य करने वाली शक्तियों को बेनकाब करते हुए यहाँ के दोनों प्रमुख सम्प्रदायों के बीच अपने साहित्य के माध्यम से सद्भाव की दिशा में प्रयास करना प्रारम्भ कर दिया था । विभाजन से उपजी अलगाववादी मनोवृत्ति एवं नफरत के वातावरण से उत्पन्न तनाव को कम करते हुए एकता के लिए किए गये प्रयासों की दिशा में प्रेमचन्दोत्तर कालीन साहित्यकारों का योगदान सराहनीय है ।

विभाजन की त्रासदी का अंकन हिन्दी साहित्य की अधिकांश विधाओं में होने के बावजूद जो मुखरता इसे कथा साहित्य के माध्यम से प्राप्त हुई वह कदाचित् अन्य साहित्यिक विधाओं में नहीं। संभवतः इसका कारण यह रहा है कि कहानी और उपन्यास विधा में अन्य विधाओं की अपेक्षा विवरण एवं विवेचन के लिए अधिक अवसर प्राप्त होता है। इनमें भी कहानी की अपेक्षा उपन्यास का फलक अधिक विस्तृत होता है। इसीलिए जहाँ कहानियों में विभाजन की त्रासदी से सम्बन्धित किसी एक पक्ष को स्वर प्रदान हुआ है, वहीं उपन्यासों में इसको व्यापक धरातल पर अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। साम्प्रदायिकता की मानसिकता तैयार करने वाले धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक कारणों से लेकर विभाजन के ऐतिहासिक परिदृश्य तथा उससे उत्पन्न रिक्तता तक, लगभग प्रत्येक पक्ष को उपन्यासकारों ने अपनी दृष्टि से देखा है।

विभाजन के धरातल पर लिखे गये उपन्यासों में कुछ अपने प्रभाव के कारण अत्यन्त चर्चित हुए। इनमें गुरुदत्त कृत 'देश की हत्या', आचार्य चतुर्सेन शास्त्री कृत 'धर्म पुत्र', विष्णु प्रभाकर कृत 'तट के बन्धन' तथा 'निशीकांत', भैरव प्रसाद गुप्त कृत 'सत्ती मैया का चौरा', यशपाल द्वारा रचित दो भागों में 'झूठा सच', डॉ० राही मासूम रजा कृत 'आधा गाँव', कमलेश्वर कृत 'लौटे हुए मुसाफिर', तथा भीष्म साहनी कृत 'तमस' इत्यादि प्रमुख उपन्यास हैं। डॉ० रणसुभे ने इन उपन्यासों को विभाजन के तीन पक्षों समकाली पूर्व एवं पश्चात से सम्बन्धित करके इन्हें चर्चित करने का प्रयास किया है।¹ परन्तु इन उपन्यासों के अध्ययन से यह वास्तविकता

1- सूर्य नारायण रणसुभे, देश विभाजन और हिन्दी कथा साहित्य,

सामने आती है कि इनमें से अधिकांश उपन्यासों में विभाजन की सम्पूर्ण त्रासदी का अंकन है । यह अवश्य कहा जा सकता है कि अमुक उपन्यास में अमुक पक्ष को अधिक विस्तार प्राप्त है ।

विभाजन सम्बन्धी उपन्यासों के लेखकों में अधिकांश किसी-न-किसी राजनैतिक विचार धारा से सम्बद्ध कलाकार हैं । गुरुदत्त एवं आचार्य चतुर्सेन शास्त्री ने अपने उपन्यासों में कट्टर हिन्दू वादी दृष्टि कोण का समर्थन किया है । दूसरी श्रेणी के उपन्यासकारों में प्रगतिवादी विचार धारा से जुड़े लेखकों का वर्ग है । तीसरी श्रेणी विचार स्वतन्त्र लेखकों की है । इनमें सर्वाधिक संख्या प्रगतिवादियों की है । इन लोगों ने एक सीमा तक इन उपन्यासों के माध्यम से अपनी प्रतिबद्धता को दर्शाया भी है परन्तु विचार स्वतन्त्र लेखकों की भाँति इन लोगों का भी मुख्य ध्येय विभाजन के माध्यम से मानव जगत के शाश्वत मूल्यों के मध्य से उपजी मानवीयता के विभिन्न पहलुओं को उभारना रहा है । प्रगतिवादी विचार धारा से प्रतिबद्ध लेखकों में भीष्म साहनी और डॉ० राही मासूम रजा का नाम यद्यपि प्रमुख है, परन्तु इन्होंने अपने उपन्यासों 'तमस' और 'आधा गाँव' में विभाजन के यथार्थ को निरपेक्ष रूप से चित्रित करने का प्रयास किया है । इसीलिए इन उपन्यासों में विभाजन की समस्या के प्रभावों से निर्मित साधारण जनता की मनःस्थिति का जीवन्त चित्रण संभव हो सका है ।¹

तमस

15 अगस्त सन् 1947 के कुछ महीने पूर्व पंजाब के एक जिले और उसके आस-पास के गाँवों से सम्बन्धित साम्प्रदायिक दंगों की पृष्ठभूमि पर आधारित भीष्म साहनी का उपन्यास 'तमस' भारत विभाजन सम्बन्धी

1- सूर्य नारायण रणसुभे, भारत विभाजन और हिन्दी कथा साहित्य, पृष्ठ 255

उपन्यासों में से एक है । विभाजन की लोम हर्षक पृष्ठभूमि को 'बीज' निशी-कान्त, 'सत्ती मैया का चौरा', 'लौटे हुए मुसाफिर' इत्यादि उपन्यासों में पहले ही आधार बनाया जा चुका था । इसीलिए साम्प्रदायिक दंगों से पाठक वर्ग कुछ हद तक परिचित भी था । अतः पुराने पढ़ गये विषय को बड़े उपन्यास के चुनने का कार्य लेखक की क्षमता एवं विश्वास का द्योतक है । कदाचित् इसके पीछे पहले लिखे गये विभाजन सम्बन्धी उपन्यासों की विवेचन और विश्लेषण की प्रवृत्ति से अलग जन साधारण के बीच से चुने गये पात्रों के माध्यम से पाठक वर्ग के समक्ष दंगों के यथार्थ, और प्रमाणिक द्योरा प्रस्तुत करने का भीष्म साहनी का साहस कार्यरत रहा है ।

जिस स्थान की घटनाओं को उपन्यास का आधार बनाया गया है , भीष्म साहनी का वहाँ से सम्बन्ध ही नहीं रहा है अपितु स्वयं वे इन घटनाओं से जुड़े रहे । इस सम्बन्ध में उनका कथन द्रष्टव्य है-" मुझे कहानी [तमस की] का ताना-बाना बुनने की, प्लॉट बनाने की जरूरत नहीं है । मुझे अनुभवों को फिर से जीना है ।" यही अनुभव उनके साहस के कारण थे।

काल विस्तार की दृष्टि से 'तमस' पाँच दिन की घटनाओं को अपने अन्दर समेटे है । परोक्ष रूप से तो इन्हीं दिनों होने वाली घटनाओं की सम्पूर्णता का चित्रण उपन्यास में है, परन्तु वास्तव में ये चित्रण एक अर्ध शताब्दी से भी अधिक वर्षों की जाति, धर्म, संस्कृति, परम्परा एवं इति-हास जैसी संकल्पनाओं की आड़ में शिकार खेलने वाली विघटनकारी शक्तियों की पोल खोलता हुआ इन संकल्पनाओं की मार से प्रभावित जन सामान्य की मानसिकता के यथार्थ को उद्घाटित करता है ।

उपन्यास की कथावस्तु दो खण्डों में विभाजित है । प्रथम तेरह

प्रकरणों के माध्यम से नगरीय साम्प्रदायिकता एवं उसके पीछे कार्य करने वाली शक्तियों से प्रभावित जन साधारण की मानसिकता का चित्रण किया गया है । नगरीय क्षेत्रों से प्रारम्भ साम्प्रदायिकता की अग्नि धीरे-धीरे ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुँचने लगी । फलस्वरूप जो साम्प्रदायिक दंगे नगरों से प्रारम्भ हुए थे उनका प्रभाव देहातों पर भी पड़ने लगा तो स्थिति अनियन्त्रित हो गयी । यह ऐतिहासिक तथ्य है । वहाँ भी लूट-पाट, मार-काट और बलात्कार का तांडव प्रारम्भ हो गया । नगरों से उत्पन्न होने वाली नफ़रत और अलगाववाद की भावना को ग्रामीण क्षेत्र में पहुँचाने के यथार्थ को दूसरे खण्ड की कथा के लिए पृष्ठ भूमि के रूप में चुना गया है ।

यदि कथावस्तु को सम्पूर्णता में देखा जाय तो उपन्यास साम्प्रदायिक दंगों की पृष्ठ भूमि के रूप में कार्य करने वाली शक्तियों, अंग्रेज शासक, हिन्दू और लीगी नीति, अवसरवादी कांग्रेसी, सिक्ख मनोवृत्ति को उद्घाटित करता हुआ हिन्दू समाज, विशेष रूप से युवा वर्ग के ऊपर संघ के प्रभाव को चित्रांकित करता है । उपद्रवोपरान्त कर्फू, फौजी-गश्त, अमन-सभा, शरणाधीनता की विक्षिप्त मनः स्थिति, रिलीफ के कार्य, नयी स्थितियों में अवसरवादियों की चालें और स्वार्थ के मुद्दों पर बदलती मानसिकता के यथार्थ को स्पष्ट करते हुए विभाजन से सम्बन्धित प्रसंगों के विवेचन विश्लेषण में राजनीतिक विवरणात्मकता की उपापेक्ष से दूर जनसाधारण की स्थितियों को उद्घाटित किया गया है ।

कथा का प्रारम्भ बदरंग मौटे सूअर को मारने में धक गये नत्थू चमार के प्रसंग से होता है । डाक्टरी काम के लिए मुराद अली ने नत्थू को सूअर मारने का काम सौंपा था यह कह कर कि, "हमारे सालोतरी साहब को एक मरा हुआ सूअर चाहिए..... इधर पिगरी के सूअर बहुत घूमते हैं, एक

सूअर को इस कोठरी के अन्दर कर लो और काट डालो ।" ¹ इस काम के लिए वह नत्थू को पाँच रुपये मेहनताने के रूप में देता है । सूअर को मस्जिद के सामने डाले दिया जाता है, मुसलमान उत्तेजित हो जाते हैं । एक गाय की हत्या कर दी जाती है । हिन्दू भड़क उठते हैं । माहौल में तनाव व्याप्त हो जाता है । अफवाहों और खुसर-फुसर के कारण दोनों सम्प्रदायों में अविश्वास और असुरक्षा की भावना जोर डालने लगती है, जो धीरे-धीरे साम्प्रदायिक हिंसा के रूप में परिवर्तित हो जाती है । शहर के बाद इसका प्रभाव कुछ दूर स्थिर गाँवों और कस्बों पड़ने पर लगता है । हिन्दू-सिक्ख और मुसलमान परिवार जो वर्षों से एक दूसरे के साथ रहते आये थे, एक दूसरे के शत्रु हो जाते हैं । हिंसा-प्रतिहिंसा, घात-प्रतिघात से उत्पन्न बदले की भावना क्रिया-प्रतिक्रियाओं द्वारा नर संहार में बदल जाती है । सम्पूर्ण दंगा ग्रस्त क्षेत्र अमानवीय बर्बरता की आग में झूलसता हुआ विभाजन को ठोस भूमि प्रदान करता है ।

‘तमस’ के अतिरिक्त विभाजन सम्बन्धी दूसरे उपन्यासों में विभाजन के सन्दर्भ में अंग्रेजों की भूमिका का नाम मात्र उल्लेख किया गया है । भीष्म साहनी ने अंग्रेजों की भूमिका को समग्रता में उद्घाटित करने का प्रयास किया है । भारत में अलगाव वादी मनोवृत्ति के बीज अंग्रेजों से छिपे नहीं थे । वे जानते थे कि, "सभी हिन्दुस्तानी चिड़चिड़े मिजाज के होते हैं । छोटे-से-छोटे उकसावे पर भड़क उठने वाले, धर्म के नाम पर खून करने वाले सभी व्यक्तिवादी होते हैं ।" ² उन्होंने इस मनोवृत्ति का लाभ ही नहीं उठाया अपितु अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु इसे विकसित करने के लिए अपनी शक्ति का उपयोग भी

1-भीष्म साहनी, तमस, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, सं० 1988 पृष्ठ 10

2- वही, पृष्ठ 44

किया । यह ऐतिहासिक सत्य उपन्यास के माध्यम से सामने आया है ।

सुअर को मार कर फिक्कवाने वाला सालोतरी निश्चित रूप से अंग्रेज है, यद्यपि इस बात का उल्लेख स्पष्ट रूप से उपन्यास में नहीं है । अंग्रेज कमिश्नर रिचर्ड की भूमिका साम्प्रदायिकता के सन्दर्भ में से समस्त ब्रिटिश सरकार की भूमिका को रेखांकित करती है । वर्षों से भारत पर शासन करने के बावजूद अंग्रेजों को यहाँ की जनता के सुख चैन से कोई सरो-कार नहीं था । इनकी सफलता यहाँ की एकता और अमन चैन की असफलता में थी । इतिहास का ज्ञाता होने के कारण रिचर्ड के लिए इस बात का समझना और भी आसान था कि, "हुकूमत करने वाले यह नहीं देखते कि प्रजा में कौन-सी समानता पायी जाती है, उनकी दिलचस्पी तो यह देखने में होती है कि वे किन-किन बातों में एक दूसरे से अलग हैं ।" । इसी समझ के कारण अंग्रेजों ने भारत पर शासन किया, इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है ।

यह जानते हुए भी कि शहर में तनाव है, रिचर्ड कुछ नहीं करता है । इसमें ही उसका लाभ था, अन्यथा वह साम्प्रदायिक तनाव पर नियन्त्रण आवश्यक पा सकता था। यह बात एक स्थान या एक अधिकारी ही नहीं अपितु समस्त दंगाग्रस्त क्षेत्रों एवं अंग्रेजी प्रशासन के सम्बन्धों पर लागू होती है । रिचर्ड को केवल मिलिट्री फोर्स भर लगा देने की आवश्यकता थी । दंगा प्रारम्भ होने के बाद भी यदि वह यह दिखाने के लिए ही सही कि शासन सजग है एक हवाई जहाज ही शहर उड़वा देता तो दंगे की भयंकरता कम हो सकती थी ।

“इतिहास प्रेमी, तक्षिशला और बुद्ध की मूर्तियों के सौंदर्य से अभिभूत रिचर्ड प्रत्यक्ष रूप से तो सौम्य और कला प्रेमी नजर आता है, परन्तु प्रशासनिक दृष्टि से आम अंग्रेज शासक से कहीं अलग नहीं है, बल्कि ब्रिटिश नीतियों के कार्यान्वयन में एक कदम आगे ही है,”¹ की मान्यता के अनुसार वह अलगाववादी बिन्दुओं को उभारता रहता है । अलगाववादी प्रवृत्ति को पहचानने के बाद उसे उभारने और विकसित करने के लिए अंग्रेजों ने साम-दाम-दंड इत्यादि सभी साधनों का प्रयोग किया । आगजनी मार-काट से शहर जलता रहा तब रिचर्ड खामोश रहा, उसकी गतिशीलता तब प्रारम्भ हुई जब सब कुछ समाप्त हो गया ।

रिचर्ड के चरित्र द्वारा लेखक ने साम्प्रदायिकता के सन्दर्भ में भारत के धार्मिक कट्टरवाद के अनन्तर अलगाववाद की मनोवृत्ति को पहचान कर अंग्रेजों द्वारा उसे अपना हथियार बनाकर प्रयोग करके अपने मार्ग को निष्कट बनाए रखने की ऐतिहासिक मान्यता के यथार्थ को उपन्यास में स्पष्ट किया गया है ।

स्वतन्त्रता का वर्ष आते-आते राष्ट्र के अधिकांश भागों की भीति पंजाब में युनियनिस्ट पार्टी और मुस्लिम लीग के समान्तर कांग्रेस का वर्चस्व स्थापित हो गया था । गाँधी जी के अहिंसात्मक विचारों को कार्यान्वित करने वाली नीतियों के अन्तर्गत सूत काटना, प्रभात फेरी, तीमार-दारी इत्यादि कार्यक्रमों का महत्वपूर्ण स्थान था । तमस में चित्रित इन्हीं कार्यक्रमों के माध्यम से कांग्रेस की विभाजन के दिनों में भूमिका एवं जन सामान्य के प्रति उसके कार्यकर्ताओं की प्रतिबद्धता को जिला स्तर के कांग्रेसी कार्यकर्ताओं की गतिविधियों के माध्यम से राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेसी चरित्र के यथार्थ को रेखांकित किया जा सकता है ।

उपन्यास का दूसरा प्रकरण काँग्रेसी कार्यकर्ताओं द्वारा संचालित प्रभात फेरी से आरम्भ होता है । इसी के द्वारा धीरे-धीरे काँग्रेसीचरित्र पर्वत-दर-पर्वत स्पष्ट होने लगता है । बख्शी जी जो कि उपन्यास के अन्त तक एक समर्पित काँग्रेसी नेता के रूप में चित्रित हैं वो भी लैम्प सिर्फ इसलिए बुझा देना चाहते हैं कि लैम्प काँग्रेस कमेटी का नहीं बल्कि उनका है ।¹ मेहता जी अपने प्रभाव का प्रयोग करके सेठी को चुनाव में टिकट सिर्फ इसलिए दिलवाना चाहते हैं, कि सेठी से उनको पचास हजार का बीमा मिलने वाला है ।² श्रौंकर मेहता जी से सिर्फ इसलिए अप्रसन्न है, कि जब नेहरू जी के आगमन पर लाहौर में समारोह का आयोजन था तो मेहता जी ने उसका नाम वहाँ जाने वालों की लिस्ट से कटवा दिया था ।³ इन छोटे मोटे मत-भेदों के कारण उत्पन्न आपसी तू-तू मैं-मैं द्वारा तत्कालीन काँग्रेसी राजनीतिज्ञों की वास्तविकता का यथार्थ सामने आ जाता है ।

बँटवारे के समय दोनों सम्प्रदायों के बीच की दूरी को बढ़ाने में काँग्रेसी नेत्रित्व पर मुसलमानों द्वारा हिन्दू चरित्र होने के आरोप ने महत्वपूर्ण कारक के रूप ने कार्य किया । बख्शी जी मेहता जी से कहते हैं कि, " दो बीड़ियों पर टाँग रखना अच्छा नहीं होता तुम हमेशा यही करते रहे हो । एक टाँग काँग्रेस में दूसरी हिन्दू-महा सभा में । तुम समझते हो किसी को मालूम नहीं, सभी को मालूम है ।"⁴ मेहता जी के इस चरित्र द्वारा 'काँग्रेस हिन्दुओं की जमात है,' के मुस्लिम समुदाय में प्रचलित नारे के कारण का यथार्थ स्पष्ट हो जाता है । इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि काँग्रेस

1- भीष्म साहनी, तमस, पृष्ठ 20

2- वही, पृष्ठ 21

3- वही, पृष्ठ 21

4- वही, पृष्ठ 81

के नेता मुसलमानों पर विश्वास नहीं करते थे चाहे वह कितना ही समर्पित कांग्रेसी क्यों न रहा हो । कांग्रेसी चरित्र के इस यथार्थ को भी लेखक ने मेहता जी के चरित्र द्वारा स्पष्ट किया है । मेहता जी बक्शी जी से उलझते हुए कहते हैं कि, "कहा था न कि लतीफ को कांग्रेस के दफ्तर में से निकालो मैं लिख कर दे सकता हूँ कि वह खुफिया पुलिस का आदमी है - और हम सब की रिपोर्ट देता है डायरियाँ लिखता है । तुम्हें भी मादूम है और मुझे भी, फिर भी तुम आस्तीन का सौप पाल रहे हो । इधर मुबारक अली लीगियों से साठ-गौठ कर रहा है । तुमसे भी पैसा लेता है, लीग वालों से भी लेता है ।" ¹ कांग्रेसी मुसलमानों के साथ साधारण मुसलमानों का व्यवहार भी नफ़रत भरा था । इस यथार्थ का उद्घाटन भी लेखक ने किया है । इन लोगों की कांग्रेसी मुसलमानों के प्रति धारणा यह थी कि, "मुसलमान का दुश्मन हिन्दू नहीं, मुसलमान का दुश्मन वह मुसलमान है जो दुम हिलाता हिन्दुओं के पास जाता है, उनके टुकड़ों पर पलता है ।" ²

कांग्रेसी वालन्टियर जनरैल सिंह के माध्यम से साहनी जी ने तत्कालीन कांग्रेसी चरित्र पर गहरा व्यंग्य किया है । जनरैल ऐसा कांग्रेसी था जो आन्दोलन हो या न हो जेल जाता रहता था । जेल में जहाँ शहर के अन्य कांग्रेसी को कम-से-कम बी० क्लास मिलता था जनरैल को हमेशा सी० क्लास में डाला जाता रहा, जिसमें वह बीमार पड़ता रहा और बालू भरी रोटियाँ खाता रहा । ³ ऐसा इसलिए था कि उसके सामने नेहरू जी के नेतृत्व में रावी के तट पर किये गये प्रण को पूरा करने का स्वप्न था । इसलिए उसके मन में कोई उद्विधा नहीं थी, जब कि अन्य कांग्रेसियों का ध्येय स्वाधीन पर आधारित था । तीमारदारी के काम का ये मतलब नहीं

1- भीष्म साहनी, तमस, पृष्ठ 81

2- वही, पृष्ठ 82

3- वही, पृष्ठ 24

था कि सचमुच में नालियाँ साफ करने में लग जाओ ।¹ उनके अपने-अपने स्वार्थ थे जो उन्हें कांग्रेस से जोड़े थे । काँग्रेसी कार्य कतारों में न आपसी सहमति थी न एक दूसरे पर विश्वास । अधिकांश अपने-अपने स्वार्थ साधने में लगे थे । जो लोग ऐसे नहीं थे अर्थात् स्वार्थहीन जन सेवा की भावना से कांग्रेस के प्रति समर्पित थे उनका अन्त जनरैल जैसा हुआ । गांधी जी के फर्मान कि "पाकिस्तान मेरी लाश पर" का उसका अरमान उसके अपने भाई बन्धुओं द्वारा तोड़ डाला गया ।² इस स्थिति में "फिस्लाद कराने वाला अंग्रेज, फिस्लाद रोकने वाला भी अंग्रेज, भूखों मारते वाला भी अंग्रेज, रोटी देने वाला भी अंग्रेज, घर से बेघर करने वाला भी अंग्रेज, घरों में बसाने वाला भी अंग्रेज....."³ की वास्तविकता से परिचित होते हुए भी राजनीतिज्ञ साम्प्रदायिकता को नियन्त्रित करने में असफल सिद्ध हुए । इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारत विभाजन के मूल में निहित साम्प्रदायिकता और कांग्रेस के आपसी सम्बन्धों को 'तमस' में यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है ।

अधिकांश इतिहासकारों ने जिस पुनरोत्थान वाद को राष्ट्रवाद की संज्ञा से अभिहित किया है उसके उत्थान में आर्य समाज की भूमिका महत्व पूर्ण रही है । परन्तु वास्तव में ये पुनरोत्थानवाद अलगाववाद का जन्म दाता था । 'तमस' के माध्यम से पुनरोत्थान वाद की अलगाववादी भूमिका का स्पष्टीकरण हुआ है । हिन्दू मानसिकता को उत्तेजित करने वाले तत्वों का उपन्यास में प्रतिनिधित्व किया है पुण्यात्मा, वानप्रस्थी, मन्त्री जी, देवव्रत, बोध राज लाला लक्ष्मीनारायण रणवीर और महेन्द्र इत्यादि ने।

1- भीष्म साहनी, तमस, पृष्ठ 51

2- वही, पृष्ठ 141

3- वही, पृष्ठ 223

"पैलाये घोर पाप यहाँ मुसलमीन ने
ने अमत फलक से छीन ली, दौलत जमीन से"।

मानसिकता से ग्रस्त पुण्यात्मा, वानप्रस्थी, मन्त्री जी इत्यादि सदियों से मुसलमानों के साथ रहने वाले हिन्दुओं को भड़काते हैं। इनके उत्तेजना पूर्ण भाषणों इत्यादि के कारण हिन्दू समुदाय मुसलमानों के प्रति उत्तेजित होने लगता है। लोग शहर के हिन्दू-सिखों को व्यापक रूप से संगठित करने आत्म रक्षा के लिए सभा-कमेटी की बात करने लगते हैं।² इन कार्यों में हिन्दू समुदाय का प्रत्येक वर्ग सक्रिय हो जाता है। लोगों द्वारा निर्णय लिया जाता है कि, देवघर द्वारा युवकों को लाठ से सिखाने का काम फौरन शुरू कर देना चाहिए। दो सौ लाठियाँ मगवा ली जायँ। अपनी रक्षा के लिए सभी सदस्य अपने-अपने घर में एक कनस्तर कड़वा तेल रखें। कच्चे पक्के कोयले की बोरियाँ भी जमा कर ली जायँ। समय पर सबको सचेत करने के लिए शिवाले वाले मन्दिर के घंटे को ठीक करवाने की बात भी तय हो जाती है।³

इस पूरे प्रकरण में लेखक ने आर्य समाज की विघटनकारी गीतवि-धियों का चित्रण करके साम्प्रदायिक दंगों के प्रथम चरण का अत्यन्त सूक्ष्मता से वर्णन किया है। बँटवारे के दिनों में थोड़े-थोड़े अन्तरों के साथ प्रत्येक साम्प्रदायिक दल की वही भूमिका रही है जो कि आर्य समाज की। आर्य-समाज की दल के संरक्षण में तत्कालीन वातावरण में बिना भविष्य की चिन्ता किए भय और आतंक का माहौल तैयार करने में राणा प्रताप, शिवाजी इत्यादि ऐतिहासिक चरित्रों के माध्यम से हिन्दूवादी भावना को और भी

1- भीष्म साहनी, तमस, पृष्ठ 60

2- वही, पृष्ठ 63

3- वही, पृष्ठ 62-63

पराश्रय मिला । उनके तथा कथित स्वप्नों को साकार करने की आकांक्षा किस प्रकार नवयुवकों और किशोरों में जागृत हुई, जिसने हिन्दू राष्ट्रवाद के विशाक्त पक्ष को उभारा, को लेखक ने रणवीर के मनोवैज्ञानिक चित्रण द्वारा साम्प्रदायिक उन्माद के यथार्थ को और भी गहरा दिया है । इसके बावजूद सभी लोग एक सिरे से इन गतिविधियों में नहीं लग गये थे । यह भी वास्तविकता है । विघटन कारी शक्तियों के बीच कुछ शक्तियाँ ऐसी थीं जिनका कि मानव मात्र की रक्षा-सुरक्षा और एकत्व की भावना से विश्वास उठा नहीं था । उपन्यास के अनेक अंशों में इस वास्तविकता का भी वर्णन है । स्वयं वगनप्रस्थी जी की सभा में भी ऐसे लोग थे । एक सज्जन सभा में लोगों से कहते हैं- "ओ महाराज, बच्चों को लाठी चलाना जरूर सिखाओ, नेजा और तलवार चलाना भी सिखाओ, सूरमा बन जायेंगे हमारे बेटे, पर सबसे पहले डिप्टी कमिश्नर से मिलो, उससे कहो कि शहर में फिस्ताद न होने दे ।" ¹ एक दूसरे सज्जन शिवाले पर घंटा सही करवाने की बात पर कहते हैं कि, "न ही बजे तो अच्छा है, भगवान कभी न बज वाये!" ²

भीष्म साहनी का सम्बन्ध आर्य समाजी वातावरण से बचपन से ही रहा है । राजनीतिक सम्पर्क प्रारम्भ में कांग्रेस से । कदाचित यही कारण है कि उपन्यास में साम्प्रदायिकता के सन्दर्भ में जिस सूक्ष्मता से हिन्दू मानसिकता को उभारा है मुस्लिम मानसिकता को उतनी गहराई प्राप्त नहीं हुई है । परन्तु यथार्थ के स्तर पर आवश्यकतानुसार मुस्लिम अलगाववादी भूमिका को भी उपन्यास में रेखांकित किया गया है ।

सन् 1946-47 तक मुस्लिम लीग को मुसलमानों का भारी समर्थन प्राप्त हो चुका था । कांग्रेस के नेतृत्व में हिन्दूवादी चरित्र के प्रभाव और

1- भीष्म साहनी, तमस, पृष्ठ 62

2- वही, पृष्ठ 63

उसकी कुछ अदूर दृष्टिपूर्ण नीतियों के कारण "कांग्रेस हिन्दुओं की जमात है उसके साथ मुसलमानों का कोई वास्ता नहीं है... कांग्रेस मुसलमानों की रहनुमाई नहीं कर सकती " ¹ की भावना आम मुसलमानों के मस्तिष्क में घर कर गयी थी । "हिन्दुस्तान की आजादी हिन्दुओं के लिए होगी, आजाद पाकिस्तान में ही मुसलमान आजाद होंगे" ² की बात मुसलमानों के दिलों में बैठ गयी । इसीलिए मौलाना आजाद आदि को वे कुत्ते की संज्ञा से अभिहित कर रहे थे । इन सब तथ्यों को उपन्यास में मुस्लिम चरित्रों और उनके कार्य कलापों के द्वारा रेखांकित किया गया है ।

भीष्म साहनी मार्क्सवादी विचारधारा से प्रीतिबद्ध कलाकार हैं । मार्क्सवादी लेखकों की भाँति पूवाग्रह से प्रेरित कम्युनिस्ट चरित्र-चित्रण की विशेष दृष्टि का उनके ऊपर भी आरोप लगाया जाता है । उपन्यास के चरित्र देव दत्त के प्रश्न गरीब कितने मरे अमीर कितने मरे को इस दृष्टि से महत्वपूर्ण माना गया है । देखने की बात है कि इस प्रश्न का ध्येय परम्परा निर्वहण के ही लिए है अथवा आवश्यक ? आर्थिक अन्तर साम्प्रदायिकता के कारणों में से एक है । उपन्यास में अन्य स्थानों पर भी इसका स्पष्टीकरण हुआ है । मानवता की भावना वाला माना जाने वाला शाहनवाज लाला लक्ष्मी नारायण की तो मदद करता है परन्तु नौकर मिल्ली को मारता है । लाला उसके बराबर के थे मिल्ली नौकर मात्र था । शाहनवाज का जनता पर प्रभाव उनकी मानवता और इमानदारी के कारण नहीं बल्कि उनके धन वैभव के कारण था इमानदार मानवता पूर्ण तो झाफरोश भी था परन्तु वह मारा गया । गाँव के गरीब हरनाम सिंह को बेघर होना पड़ता है जबकि गाँव के सरदारों का मुखिया लाखों का माल सहेज कर रखे है और उसका बाल भी

1- भीष्म साहनी, तमस पृष्ठ 32

2- वही, पृष्ठ 32

बाँका नहीं होता है । अतः साम्प्रदायिकता के सन्दर्भ में सूअर किसने फिँकवाया से क्यों फिँकवाया की भाँति अमीर कितने मरे और गरीब कितने मरे भी महत्वपूर्ण प्रश्न है ।

"हमें नहीं भूलना चाहिए कि हम लोगों को मुसलमानों के खिलाफ भड़काया जा रहा है और मुसलमानों को हमारे खिलाफ भड़काया जा रहा है । हम झूठी अ-फवाहे सुनकर एक दूसरे के खिलाफ तैश में आ रहे हैं,"¹ कहने वाला देव दत्त शुद्ध मानवता वादी पात्र के रूप में चित्रित किया गया है । साथ ही मजदूरों की बस्ती में साम्प्रदायिक उन्माद फैलने का चित्रण है । उपन्यास में अनेक दूसरे पात्र भी मानवता की भूमि पर अवतरित हुए हैं जिनका देव दत्त की भाँति किसी पार्टी इत्यादि से कोई सम्पर्क नहीं है अतः यह कहना कि उपन्यास में कम्युनिस्ट चरित्रों के साथ पक्षपात है, उचित प्रतीत नहीं होता है ये पात्र भी तत्कालीन साम्प्रदायिकता के यथार्थ अभिव्यक्ति के साधन मात्र हैं । जिस श्रेणी के जनरल सिंह अल्ला रक्खा राजो इत्यादि हैं उसी के ये पात्र भी ।

राजो हरनाम सिंह और उसकी पत्नी को यह जानते हुए भी कि उसका बेटा और पति दूसरे गाँव में सिकखों की लूट मार रहे हैं । अपने घर में शरण देती है । उन्हें जब सुरक्षित गाँव की सीमा के बाहर छोड़ने आती है और कहती है, "मैं नहीं जानती कि तुम्हारी जान बचा रही हूँ या तुम्हें मौत के मुँह में झोंक रही हूँ । चारों तरफ आग लगी है ।.....ये तुम्हारे ट्रंक में से मिले हैं, तुम्हारे दो गहने हैं मैं निकाल लायी हूँ तुम्हारे आगे कीलन समय है, पास में दो गहने हुए तो सहारा होगा ।"² इस प्रकार राजो का चरित्र मानवता के उच्च आदर्शों के धरातल पर नफरत के वातावरण में

1- भीष्म साहनी, तमस, पृष्ठ 176

2- वही, पृष्ठ 199

मनुष्यता के सोते के रूप में उभरा है ।

विभाजन की पृष्ठभूमि में कार्यरत अंग्रेजों की शक्ति और राजनी-
तिक एवं धार्मिक शक्तियों के यथार्थ के साथ राजों के चरित्र की भाँति
राजनीतिक, धार्मिक एवं साम्प्रदायिक विचारधार की प्रतिबद्धता से मुक्त
सर्व साधारण के बीच निकले आम आदमियों की मानसिकता, छोटे-छोटे
तथ्य जो घटनाओं का बड़ा बना रहे थे, इसके यथार्थ की सूक्ष्म पकड़ भी
उपन्यास की विशेषताओं में से एक है । नत्थू के चरित्र द्वारा तत्कालीन
परिस्थिति-यों में निम्न स्तर के लोगों की विवशता का उद्घाटन हुआ है।
छगन्त्र कारी केवल पाँच रूपयों का लालच देकर उसकी आर्थिक स्थिति का
लाभ उठाते हैं, वह वास्तविकता से अवगत हो जाने के बावजूद भी कुछ नहीं
कर सकता है । उपन्यास का एक अन्य पात्र खुदा बक्श जिसका व्यवहार
प्रत्येक वर्ग और समुदाय के लोगों के साथ स्नेह पूर्ण है, लेकिन उसकी स्थिति
भी साम्प्रदायिक दंगों के संदर्भ में नत्थू से कम नहीं । मन्दिर वाले घड़ियाल
की मरम्मत के समय होने वाली आवाज से उसकी रूढ़ कंप जाती है क्योंकि,
"पहले फिस्ताद में जब बजा था तो मंडी में आग लगी थी और शोले आधे
आसमान को ढंके थे,"¹ मगर वह कर ही क्या सकता था सिवा भगवान के
याद करने के ।

साम्प्रदायिकता और विभाजन के संदर्भ में आम आदमी की मान-
सिकता प्रकट करने वाले दूसरे भी अनेक चित्रण 'तमस' में हैं । कुछ लोगों का यह
विश्वास कि विभाजन होगा ही नहीं, यदि हुआ भी तो जो जहाँ है वह
वहीं रहेगा उपन्यास का एक पात्र कहता है, "छोड़ो शाह, यह सयासत दोनों
के चोपले हैं । बन भी गया तो क्या होगा, लोग तो यहीं पर रहेगे वहीं
भागे तो जा रहे नहीं हैं ।"² परन्तु यह विश्वास गलत सिद्ध हुआ । अगर

1- भीष्म साहनी, तमस, पृष्ठ 92

2- वहीं, पृष्ठ 244

यह विश्वास पहले ही टूट गया होता तो सम्भवतः विभाजन का परिणाम इतना भयानक न होता । अलगाववाद और विभाजन के परिणामों की गंभीरता बढ़ाने में भारतीय जनमानस की भाग्यवादी मनोवृत्ति का भी हाथ था । यह तथ्य भी उपन्यास में स्पष्ट हुआ है । भाग्यवादी मनोवृत्ति को अलगाववाद के संदर्भ में देखे तो भारत में आज भी धर्म का नाम लेकर किसी भी समुदाय की भावनाओं को भड़काया जा सकता है । विभाजन के समय तो अज्ञानता और रूढ़ियों का और भी बोल-वाला था । एक बूढ़ा व्यक्ति कहता है कि, "सभी कुछ मालिक के हाथ में है, इन्सान के हाथ में कुछ भी नहीं, सब काम परवरदिगार के हुक्म से होते हैं उसका जो हुक्म होगा । वही होगा ।"। इसी भावना के कारण लोग अन्त तक साम्प्रदायिकता के पीछे कार्य करने वाली शक्तियों की तरफ ध्यान नहीं दे पाये ।

दंगों के समय और उसकी समाप्ति के बाद की विकृत मानसिकता के कुकृत्यों का यथार्थ रूप भी उपन्यास में चित्रित है । हरनाम सिंह के पुत्र इकबाल सिंह का लीगियों द्वारा प्रताणित करके धर्म परिवर्तन करने वाले दृश्य में तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं । सिक्ख स्त्रियों के द्वारा सामुहिक हत्या का उल्लेख भीष्म साहनी ने कई स्थानों पर किया है । उपन्यास में भी इस यथार्थ घटना को स्थान मिला है ।

साम्प्रदायिकता की आग में झुलसती मानवता के दम तोड़ते और भी ऐसे प्रसंग उपन्यास में वर्णित हैं जो कि विभाजन के त्रासद पक्ष को गहराते हुए साम्प्रदायिकता जनीन विभत्स मानसिकता को उद्घाटित करते हैं । गाँव के कुछ लोग आपस में एक दूसरे से बात करते हुए कहते हैं, "हम गली में घुसे हिन्दुओं की एक लड़की अपने घर की छत पर चढ़ गयी । हमने देख लिया

जी । सीधे दस बारह आदमी उसके पीछे छत पर पहुँच गयेजब हमने उसे पकड़ लिया तब बारी-बारी से दबीचा ।.....जब मेरी बारी आयी तो नीचे न हूँ न हूँ वह हिले ही नहीं, मैंने देखा लड़की मरी हुई..... मैं लाश से ही जना किये जा रहा था ।"¹ विकृत मानसिकता की ऐसी गतिविधियाँ विभाजन के दिनों में आम थीं ।

सनातनी मानसिकता के यथार्थ के भी अनेक उदाहरण उपन्यास के द्वारा सामने आते हैं । घंटों भूखे-प्यासे रहने के बावजूद भी हरनाम सिंह एवं उसकी पत्नी शरण देने वाली राजों के हाथों से पवित्र भला और चीज क्या ही सकती थी ? दंगों के बाद पीड़ित दम्पति अपनी पुत्री प्रकाशों को इसलिए नहीं स्वीकार करते हैं कि, "बुरी वस्तु तो उन्होंने मुसलमानों के मुँह में पहले ही डाली होगी ।"² इस प्रकार की मानसिकता ने भी अलगाववाद को पराश्रय दिया, 'तमस' में वर्णित इन प्रसंगों के प्रकाश में इस तथ्य को रेखांकित किया जा सकता है । सनातनी मनोवृत्ति की अलगाव-वादी भूमिका के सन्दर्भ विभाजन सम्बन्धी दूसरे उपन्यासों और कहानियों में भी पर्याप्त रूप से मिलते हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'तमस' में यद्यपि विभाजन का प्रत्यक्ष यथार्थ तो नहीं है, परन्तु साम्प्रदायिक उन्माद जो कि विभाजन के संदर्भ में रीढ़ की हड्डी की हैसियत रखता था, के द्वारा लेखक ने विभाजन की त्रासदी को यथार्थ के धरातल पर उसके पीछे कार्य करने वाली शक्तियों और मानसिकता का दस्तावेजी रूप चित्रित किया है । शहर और उसके आस पास देहातों में जो कुछ भी घटित हुआ बाद में उसे राष्ट्रीय स्तर पर विस्तार प्राप्त हुआ । अतः 'तमस' में चित्रित एक शहर और उसके आस पास के देहातों

1- भीष्म साहनी, तमस, पृष्ठ 211

2- वही, पृष्ठ 238

के साम्प्रदायिक उन्माद को राष्ट्रीय स्तर की साम्प्रदायिकता के प्रति-
बिम्ब के रूप में देखा जा सकता है । इस सम्बन्ध में कृष्णा सोबती का
वक्तव्य उल्लेख्य है—“तमस जिन्दगी की छोटी बड़ी लड़ाइयों की कहानी
नहीं । यह विभाजन जैसी ऐतिहासिक घटना का, संघर्ष का वह महत्वपूर्ण
दस्तावेज है, जिसमें एक साथ लाखों लोग अपने-अपने ठिकानों से उखड़े ।”¹

‘आधा गाँव’

डॉ० राही मासूम रजा के प्रकाशित समस्त उपन्यासों में विभाजन
की समस्या से उत्पन्न हिन्दू मुस्लिम सम्बन्धों पर आधारित उपन्यासों की
संख्या तीन है । सन् 1966 में प्रकाशित ‘आधा गाँव’ सन् 1969 में प्रकाशित
टोपी शुक्ल और ‘ओस की बूँद’ इसमें जो प्रसिद्धि ‘आधा गाँव’ को प्राप्त हुई,
कदाचित्त उनके दूसरे उपन्यासों को नहीं ।

भीष्म साहनी के उपन्यास ‘तमस’ के विपरीत ‘आधा गाँव’ में विभा-
जन की समस्या को केवल ग्रामीण मनोभावों के स्तर पर रूढ़िगत और अशिक्षित
जनता की दृष्टि से देखने का प्रयास किया गया है । भारत के ग्रामीण
जन जीवन में नगरों की अपेक्षा साम्प्रदायिकता की अग्नि बाद में पहुँची ।
अलग-अलग धर्मविलम्बी होने के बावजूद ग्रामीण समुदाय सांस्कृतिक रूप से
अधिक मजबूती से जुड़ा था । ‘आधा गाँव’ में इसी स्थिति को चित्रित किया
गया है । ‘तमस’ की अपेक्षा ‘आधा गाँव’ का समय भी लम्बा है । ‘तमस’ में
देश विभाजन की पृष्ठ भूमि निर्मित करने वाली शक्तियों के रेखांकन पर
अधिक बल दिया गया है, जबकि ‘आधा गाँव’ की कहानी विभाजन पूर्व की
घटनाओं से लेकर विभाजन के फलस्वरूप मुस्लिम समाज के विखर जाने से उत्पन्न

1- कृष्णा सोबती, हम हशमत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित,
सं० 1977, पृष्ठ 29

खोखलेपन और निरर्थकता को उद्घाटित करती है ।

उपन्यास की संकेन्द्रित पृष्ठ भूमि में एक गाँव होता है वह भी पूरा नहीं आधा, जितना कि लेखक जीता है । वह गाँव उत्तर प्रदेश जिला माजी-पुर का सैयद मुसलमानों वाला 'गंगौली' है । उपन्यास की कहानी को उपन्यासकार स्वयं स्पष्ट करते हुए लिखता है कि, 'यह कहानी न कुछ लोगों की कहानी है न कुछ परिवारों की यह उस गाँव की कहानी भी नहीं है जिसमें इस कहानी के भले-बुरे पात्र अपने आप को पूर्ण बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं यह कहानी न धार्मिक है न राजनीति की.....यह गंगौली से गुजरने वाले समय की कहानी है ।' आधा गाँव का समय यानी कि इस का फलक द्वितीय विश्व युद्ध की पृष्ठ भूमि में प्रारम्भ होने वाले स्वतन्त्रता आन्दोलन के अन्तिम दौर से शुरू होकर स्वतन्त्रता के बाद तक के समय को अपने अन्दर समेटे है । स्वतन्त्रता आन्दोलन का अन्त मिलने वाली आजादी से हुआ । आजादी ने भारतीयों से जो अन्तिम और बहुत बड़ी कीमत वसूल की, वह थी विभाजन । मोहरम को केन्द्र में रख कर भारत के मुस्लिम समाज और विभाजन के अन्तर्सम्बन्धों का अपनी समग्रता में विश्लेषण विवेचन इस उपन्यास की समस्याओं में से एक है ।

'आधा गाँव' का पूरा गाँव गंगौली, शीया और सुन्नी मुसलमानों का गाँव, सैयद जुलाहों, राक्षियों, उत्तर पट्टी और दक्खिन पट्टी और आस-पास के पुखों मुहल्लों को सम्मिलित कर लेने पर हिन्दू और मुसलमानों, छूतों और अछूतों, एक सीमा तक जमींदारों और आसामियों में बँटा है । बावजूद इस बँटवारे के एक ऐसी रेखा है जिसने सबको एकता के सूत्र में पिरोये रखा है । परन्तु देश के सीने पर खींची गयी रेखा गंगौली को भी अपनी चपेट में ले लेती है ।

1- राही मासूम रजा : आधा गाँव, राज कमल प्रकाशन प्रा० लि० नई दिल्ली

द्वारा प्रकाशित सं० पेपर बैक्स सन् 1989 पृष्ठ 3

‘आधा गाँव’ में कहानी के तीन चौथाई के बाद का हिस्सा विभाजन की कहानी की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, जिसमें विभाजन की ऐतिहासिक प्रक्रिया के फलस्वरूप बनती चेतना का अंकन है । अंग्रेजी शासन के समाप्त होने के साथ लम्बे समय से चली आ रही जमींदारी व्यवस्था का भी अन्त हुआ । कहानी के इसी भाग से जमींदारी उन्मूलन एवं उसके फलस्वरूप गंगौली के सामाजिक जीवन में आये परिवर्तन को भी रेखांकित किया गया है । यही वह भाग है जहाँ से यह स्पष्ट होता है कि गंगौली का मुसलमान कितना अपने गाँव का है कितना अपने धर्म का, कितना भारतीय है और कितना मुसलमान । विभाजन के सन्दर्भ में गंगौली के मुसलमानों की मानसिकता का उपन्यास के इसी बिन्दु से उद्घाटन होता है, जो कि कमोबेश मुसलमानों के एक बड़े वर्ग की मानसिकता को प्रतीकायित करता है क्योंकि थोड़े बहुत वाह्य अन्तरों के अतिरिक्त भारत के उत्तरी भाग के मुस्लिम समाज की जीवन शैली लगभग एक जैसी ही थी । •

मोहर्रम का मुसलमानों के धार्मिक और सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है । इसकी व्यापकता में गंगौली के जीवन और समाज में होने वाले परिवर्तन तथा उससे निर्मित मानसिकता, पर्त-दर-पर्त स्पष्ट होती चली गयी है । यहाँ एक तरफ़ मियाँ लोगों की जमींदारी का गुरुर और ठाट-बाट है तो दूसरी तरफ़ उनके जीवन का हास, विद्रूपता खीखलापन बखूबी उभरता है । मियाँ लोगों से सम्बन्धित अहीर जुलाहे और ठाकुरों इत्यादि के भी कुछ बन्द खुलते हैं । इन सब को उभारने और खोलने में मोहर्रम का कार्य प्रमुख है । मोहर्रम के ताजिश के जुलूस में मियाँ लोग खून खराबा तक कर बैठते हैं लेकिन इमाम बाड़े का फर्शी और वहाँ के अधेरे में हकीम अली कबीर की गूँजती हुई आवाज ‘हे शब्बू पढ़ो भाई’ सबको एक सूत्र में बाँधे रहती है ।

मोहर्रम का गंगौली के जीवन में दखल इतना अधिक है कि उनकी खुशियाँ उनके दुःख, उनके जीवन का कोई भी पक्ष मुहर्रम से अलग होकर नहीं देखा जा सकता है । मोहर्रम की व्यस्तता में वे अपने इतिहास से इतने बेखबर थे कि उन्हें इतनी फुरसत ही नहीं मिलती थी कि बरगद की छाँव में लेट कर अपने इतिहास के विषय में सोचें जो कि रामायण से आगे तक फैला हुआ है ।¹ फिर भला उन्हें विभाजन की लेकर उठा प्रश्न कैसे प्रभावित कर सकता था जो कि अपना लम्बा.....इतिहास भी नहीं रखता था, न ही उनके लिए उसकी खास अहमियत थी इसलिए "ख्याल में भी कभी गंगौली वालों को गंगौली छोड़ने की बात न आती थी ।"² वो किससे अलग होते ? उस भारत से जहाँ आने की तमन्ना इमाम हुसैन के भी दिल में रही हो ।³ गंगौली के जीवन में हिन्दू मुसलमानों की एकता की जड़ों की गहराई का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि, "शिया मुसलमानों में क्या ख्याल आम है कि एक कश्मीरी ब्राह्मण कबिला में शहीद हुआ था ।"⁴ मुहर्रम का ताजिया उठाने वाले हिन्दू होते थे ताजिए के आगे चलने वाले हिन्दू । ग्रामीण जीवन में पीर-फकीरों की मजार पर चादर चढ़ाने का कार्य यदि हिन्दू करते थे तो मंदिर के लिए जगह जमीन की व्यवस्था करने में मुस्लिम जमींदार पीछे नहीं रहते थे ।⁵

आपसी लड़ाई के कारण गंगौली के मियाँ लोग फुन्नण मियाँ की लड़की रज़िया की मौत के बाद उसकी अर्थी को कंधा देने से इन्कार कर देते हैं । कंधा देने वालों में शिंगुरियाँ और ठाकुर पृथ्वी पाल के साथ उनका

1- राही मासूम रजा, आधा गाँव, पृष्ठ 3

2- वही, पृष्ठ 63

3- वही, पृष्ठ 52

4- वही, पृष्ठ 52

5- वही, पृष्ठ 174

सारा परिवार होता है । जनाजे की नमाज के बाद जब फुन्नन मियाँ अपनी बेटी को कब्र में उतारना चाहते हैं तो पृथ्वी पाल कहता है, "हम उतारब अपनी बहिन को"।¹ सांस्कृतिक और सामाजिक रूप से इस तरह एक दूसरे से बंधे गंगौली वालों के मस्तिष्क में बैठना इतना आसान नहीं था कि हिन्दू मुसलमान को इस देश से निकाल देना चाहता है, मुसलमान हिन्दुओं के दुश्मन हैं ।

अलगाव वादी तत्व द्वारा प्रचारित किया जाने लगा कि, "पाकिस्तान न बना तो आठ करोड़ मुसलमान यहाँ ॥ भारत में ॥ अछूत बन जायेगा" ² ये बात मुसलमानों की समझ से बाहर की थी । जो लोग अपने जीते जी उन लोगों की मौबहिन की तरफ आँख उठाने वाले की आँख फोड़ने के लिए तैयार हैं ।³ उनके साथ पीढ़ियों से रहते आये हैं वो उनके साथ ऐसा व्यवहार भला क्यों करेंगे । हिन्दू अलगाववादियों द्वारा भड़काने पर कि मलेच्छों ने तो भारत वर्ष को तहस-नहस कर दिया है मन्दिरों को तोड़-तोड़ कर मस्जिदें बनवा ली हैं इन पापियों ने तो इस बात को हिन्दू नहीं मान पाते क्योंकि उन्होंने तो मियाँ लोगों को दशहरे का चंदा देते और बाबा के मठ के लिए जमीन देते देखा था ।⁴ वास्तविकता भी यही थी ग्रामीण समाज में छुट-पुट अलगाव वादी तत्वों को छोड़ कर जो कि बाहर से आये थे उनके अपने निजी स्वार्थ थे । यह बात लेखक ने फुन्नन मियाँ के द्वारा स्पष्ट भी कर दिया है कि, "पाकिस्तान पेट भरन का खेल है ।"⁵

1- राही मासूम रजा, आधा गीत, पृष्ठ 68

2- वही, पृष्ठ 244

3- वही, पृष्ठ 245

4- वही, पृष्ठ 174

5- वही, पृष्ठ 263

कलकत्ते से प्रारम्भ प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस का साया जब उत्तर-पूर्वी भारत के बड़े-बड़े शहरों को अपने घेरे में ले चुका था तब भी इसका ग्रामीण क्षेत्रों पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा था, यद्यपि उससे सम्बन्धित अफवाहें गावों तक पहुँचने लगी थीं । लेकिन गंगौली के आस पास के हिन्दुओं की समझ में ये नहीं आ रहा था कि " अगर गुनाह कलकत्ता के मुसलमानों ने किया है तो बारिखपुर के वफाती अलावपुर के घुरऊ, हूँडरही के घसीटा को यानी अपने मुसलमानों को सजा क्यों दी जाय ? जिन मुसलमान बच्चियों ने छुटपन में उनकी गोद में पेशाब किया है, उनके साथ जिना क्यों और कैसे की जाय ? उनकी समझ में ये भी नहीं आ रहा था कि जिन मुसलमानों के साथ वह सदियों से रहते चले आ रहे हैं, उनके मकानों में आग क्यों और कैसे लगा दी जाय, उन मुल्ला जी को कोई कैसे मारे जो नमाज पढ़ कर मस्जिद से निकलते हैं तो हिन्दू मुसलमान सभी बच्चों को फूँकते हैं ।" लेकिन धीरे-धीरे साम्प्रदायिक तत्व विरोध की आग भड़काने में सफल हो गये । मास्टर जी और स्वामी जी जैसे लोगों की मानसिकता काम चलायी । अतः बारिखपुर के हिन्दुओं का समूह मुसलमानों को लूटने-मारने निकल पड़ता है । इस स्थिति में उपर्युक्त हिन्दुओं की मानसिकता लेखक सलाह मात्र अधिक प्रतीत होती है सच्चाई नहीं । यह ऐतिहासिक सत्य भी है कि एक स्थिति के बाद ग्रामीण भी आपसी सम्बन्धों को भूल गये अल्पसंख्यकों की अधिक हानि हुई । भारत के हिस्से में मुसलमानों की पाकिस्तान में हिन्दुओं की । लेकिन अब भी एक बड़ा हिस्सा इन सबसे दूर था । ठाकुर पृथ्वी पाल सिंह जैसे अनेक लोग थे जो यह मानने को तैयार नहीं थे कि सिर्फ इस जुर्म में लोगों के कत्ल किये जायें वह मुसलमान हैं ।

अफवाहों और वहकाओं के कारण साम्प्रदायिकता के लिए ग्रामीण जीवन में जमीन तैयार तो होने लगी थी लेकिन पाकिस्तान और हिन्दुस्तान

जैसे सवालों से ग्रामीण जनता अभी पूरी तरह परिचित नहीं हुई थी । जो लोग थोड़ा बहुत परिचित हुए वो जमींदार जैसे तपकों से थे उन्हें इस मसले को जमींदारी से जोड़ कर समझाया गया, "कांग्रेस जमींदारी को तोड़ने की कोशिश जरूर करेगी क्योंकि ज्यादा जमींदार मुसलमान ही हैं ।..... अगर ऐसा हुआ तो पाकिस्तानी फ़ौज दिल्ली पर हमला कर देगी ।"¹ इसके बावजूद वे लोग पाकिस्तान में बहुत अधिक रुचि नहीं प्रदर्शित करते हैं । पाकिस्तान यदि बन भी जाये तो ये लोग पाकिस्तान जाने को तैयार नहीं होते हैं क्योंकि अपनी जमीन यहाँ के लोग सब अपने थे । यहाँ के इमाम बाड़े का, मस्जिदों का क्या होगा । कमों कहता है "ऐ साहब जब मुसलमाने लोग पाकिस्तान चले जाय हैं, तो फिर मस्जिद में छोड़ा बंधे चाहे गाय"²

अब सवाल यह सामने आता है कि मुसलमानों ने लीग को ओट क्यों दिया, उसके पीछे क्या मानसिकता कार्य कर रही थी जब वे पाकिस्तान के पक्ष में नहीं थे । इसके पीछे कारण था जमींदारी जाने का भय । इसीलिए मिथ्या लोग कांग्रेस और गांधी को कोसते हैं, "इ कांग्रेस वाले त आसा-मियन का दिमाग इकदम से खराब कर दिहिन हैं भाई, खुदा समझे ई गांधी से ।"³ स्वतन्त्रता के बाद जमींदारी उन्मूलन के कारण गंगोली के जमींदारों की दुदृष्टि का जो चित्रण उपन्यास में है वह उनकी लीग के समर्थन के लिए बनी मानसिकता के कारणों के स्पष्ट करता है ।

अलगाव पैदा करने के लिए मुस्लिम समाज के पढ़े-लिखे वर्ग को पाकिस्तान बनने के बाद नौकरी का लालच भी दिया गया । अब्बास

1- राही मासूम रजा, आधा गाँव, पृष्ठ 257

2- वही, पृष्ठ 245

3- वही, पृष्ठ 92

कहता है कि, "पाकिस्तान बन गया तो मुसलमान ऐश करेगे-ऐश"।¹ अलीगढ़ से आये लड़के गाँव वालों से मुस्लिम लीग का समर्थन प्राप्त करने के लिए धार्मिक भावना का भी प्रयोग करते हैं। नमाज रोजा की दुहाई देते हैं। नमाज के बचाव के लिए तो पाकिस्तान की जरूरत है का जवाब देते हुए हाजी अंसारी कहते हैं, "हम त अनपढ़ गँवार हैं। बाकी हमारे खयाल से निमाज की खातिर पाकिस्तान-आकिस्तान की तनिको जरूरत ना है। निमाज के वास्ते खाली ईमान की जरूरत है। खुदाबन्दा ताला साफ फरमा दिहिस है कि मेरे पैगंबर कह दे ई लोग से, कि हम इमान बालन के साथ हैं। अठरी कानी कउन त कहता रहा कि आप लोगन के जउन जिन्ना हैं उ निमाजो न पढ़ते"।² अन्तिम वाक्य जो कि एक गँवार ने कहा है वह पाकिस्तान और इस्लाम के आपसी सम्बन्धों की सच्चायी को स्पष्ट कर देता है।

जमींदारी के टूटने के डर, मजहबी उफान, और दूसरी तरफ हिन्दू अ-लगाव वादी तत्वों की विध्वंसक कार्यवाहियों की खबरों इत्यादि से मुसलमानों की रूझान लीग की तरफ होने भी लगी, परन्तु फिर भी पाकिस्तान में उनकी कोई खास दिलचस्पी नहीं हुई। तन्नू को वहाँ आठवीं मुहर्रम की मजलिस भला कहीं मिलती। बैठकर गन्ना खाने के लिए गंगौली वाला गोदाम भला कहीं मिलता। गंगौली उसका गाँव था अल्ला मियाँ का घर मक्का। जब अल्ला मियाँ को अपने घर से प्यार था तो भला अपने गंगौली से प्यार क्यों न हो।³ कम्मों की चाहत सईदा अलीगढ़ में रहती है। अलीगढ़ के पाकिस्तान जाने के साथ अगर वो भी चली गयी तो फिर

1- राही मलूम रजा, आधा गाँव, पृष्ठ 52

2- वही, पृष्ठ 247

3- वही, पृष्ठ 256

उसके लिये क्या बचेगा ।¹ मिगदाद की जमीन, खेत गंगौली में है, हल बैल से उसे शरम नहीं आती । इसलिए वह गंगौली क्यों छोड़े ।² कम्पों तन्नू या मिगदाद का दर्द अधिकांश मुस्लिम जनता का दर्द था । उसकी जड़े यहाँ इतनी गहराई तक पहुँच गयी थीं कि उनके हलसने भर से पौधा सूख जाने का खतरा था, फिर पौधे के जड़ से टूट जाने पर उसका परिणाम क्या होता ?

मुस्लिम जन समुदाय की पाकिस्तान सम्बन्धी मानसिकता के उद्घाटन के साथ लेखक ने मुसलमानों से जुड़ी हुई आम हिन्दू मानसिकता को भी छुट-पुट रूप से रेखांकित किया है । वे भी हिन्दुस्तान पाकिस्तान के उलझावे से अपरिचित थे । कांग्रेस को ओट देने को तो तैयार हो गये थे लेकिन लीग और कांग्रेस तथा हिन्दुस्तान पाकिस्तान का सही अर्थ उन्हें मालूम नहीं था । छिकुरिया कुल सूम बी से कहता है—“हम त समझत बाड़ी की ई पाकिस्तान कउनो महजिद-ओहजिद होई ।”³

धीरे-धीरे जुड़ाव और एकता की मानसिकता को विघटित करने वाली शक्तियाँ संगठित हो गयीं । विघटन कारी तत्व जो पहले शहरी मध्य वर्ग तक सीमित थे, उनका प्रभाव देहातों में भी बढ़ने लगा । यद्यपि उनको महत्व पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई । ‘तमस’ के वान प्रस्थी जी और मास्टर जी का जो प्रभाव था वह आधा गाँव में अलीगढ़ आये लड़कों और अब्बास का उपन्यास के अन्त तक गंगौली से जुड़े जीवन में कहीं भी लक्षित नहीं होता है ।

1- राही मासूम रजा, आधा गाँव, पृष्ठ 242

2- वही, पृष्ठ 219

3- वही, पृष्ठ 243

अलीगढ़ जो कि लीग की गतिविधियों का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था, वहाँ विश्वविद्यालय के लड़कों का उत्था गाँव-गाँव जाकर बँटवारे के समर्थन में मुसलमानों को लीग की तरफ झुकाने में लगा था । गंगौली के अम्माद मियाँ का लड़का छुट्टियों में अलीगढ़ से आने के बाद राजा महमूद बाद चौधरी खलीकज्जमा गजनफर अली, नवाब इसमाईल, नवाब यूसुफ, सर सुलतान और जिन्ना इत्यादि का नाम लेते हुए भावुकता भरे तर्क देता है । "हिन्दुस्तान के दस करोड़ मुसलमान कायदे आज़म के पसीने पर अपना खून बहा देंगे" । स्वामी जी जैसे हिन्दू वादी तत्त्व भी हिन्दू समाज को भड़काने में पीछे नहीं थे । भारत की धरती को मुसलमानों से पवित्र करने का आह्वान कर रहे थे ।" आज मुरली मनोहर भारत के हर हिन्दू को पुकार रहा है कि उठो और गंगा और यमुना के पवित्र तट से इन मलेच्छ मुसलमानों को हटा दो धर्म संकट में है । गंगाजली उठाकर प्रीतिज्ञा करो कि भारत की पवित्र भूमि को मुसलमानों के खून से धोना है ।"² हिन्दू महा सभा और आर० एस० एस० के लोग उस समय इस प्रकार की विध्वंसात्मक गतिविधियों में सक्रिय रूप से लगे थे ।

मासूम रजा ने आधा गाँव में हिन्दू और मुस्लिम दोनों अलगाव वादी तत्वों के इस ऐतिहासिक यथार्थ को स्पष्ट करते हुए उसके प्रभाव का विश्लेषण भी किया है । अब्बास की बातों का असर अधिक नहीं होता है उसकी बात लोग सुनते भी हैं तो इसलिए नहीं कि वे उन्हें प्रभावित करती है, बल्कि इसलिए कि वह पढ़ा लिखा है । अलीगढ़ के लड़के हाजी गफ़ूर के सामने पित हो जाते हैं । स्वामी जी के भाषण के दौरान जनता के भड़क जाने पर भी एक नौ जवान जब वफाती को गाली देता है तो वारिखपुर का जवान उसका विरोध करता है" बूढ़ पुरनियाँ के

1- राही मासूम रजा, आधा गाँव, पृष्ठ 52

2- वही, पृष्ठ 280-281

गाली बककत बाड़ा:.....लाज त न आवत होई ?" ¹ और उत्तेजित भीड़ के द्वारा मुसलमानों के घरों पर हमला करते समय ठाकुर जय पाल सिंह द्वारा उनके बचाने की घटना भी अलगाव वादी तत्वों की असफलता को दर्शाती है । लेकिन इसी के साथ उपन्यास में वर्णित राक्षसों जुलाहों के लीग के समर्थन का विचार और बारिखपुर के चन्द मुसलमानों पर धावे के लिए तैयार मज्जमें से आने वाले भविष्य का संकेत प्राप्त हो जाता है ।

कलकत्ते में मुस्लिम लीग द्वारा प्रारम्भ प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस के फलस्वरूप सम्पूर्ण उत्तर पूर्वी भारत में जो साम्प्रदायिक हिंसा का सिल-सिला प्रारम्भ हुआ उपन्यास में उस के ग्रामीण जन जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव का चित्रण किया गया है । आने वाली अफवाहों और खबरों का गंगौली वालों पर कोई खास असर नजर नहीं होता, छुट-पुट होने वाली घटनाओं के अतिरिक्त, वह भी स्थानीय लोगों के भड़कावे के कारण होती है, मुसलमान खबरों और अफवाहों पर विश्वास ही नहीं करते । मौलवी बेदार के द्वारा कलकत्ते के बलवे की बात और वहाँ हो रहे मुसलमानों पर अत्याचार की चर्चा के जवाब में हकीम साहब कहते हैं "बाकी मुसलमानों कउनो हलाल जादे ना है..... बाकी ओठरा काउन खोजिस" ² फुन्नन मिथी कलकत्ता और लाहौर में होने वाले अत्याचारों की कहानी सुनाकर भड़काने वाले पीड़ित माता दीन को इसलिए कुछ नहीं कहते कि पीड़ित जी को मंदिर बनवाने के लिए जमीन दिया था । उनकी नजर में मन्दिर भी खानस खुदा है । ³ फुन्नन मिथी को सदियों से एकता और आपसी विश्वास से रहते चले आ रहे हिन्दुओं पर विश्वास भी था इसलिए मिगदाद से कहते हैं "हिन्दू

1- राही मासूम रजा, आधा गौव, पृष्ठ 28।

2- वही, पृष्ठ 270

3- वही, पृष्ठ 270

कउनो चूतिया ना हैं की उनके ॥स्वामी जी॥ भड़कावे में आ जैय है ।¹

मुसलमानों की भाँति ही हिन्दू ग्रामीण समाज भी इन दंगे-फसाद की अपवाहों द्वारा बहुत अधिक प्रभावित नहीं हुआ । ठाकुर जय पाल सिंह द्वारा मुसलमानों पर हमला करने वाले आताताइयों को क्रोध में कहे गये 'वाक्य' खेरियत एही में बाय की चल जा लोग । का नवाखाली मौ हई, बफतिया अउर हई, दिलदरवा अउरी हई, अलुआ हिन्दू इसत्रियन के खराब किहले बाये ! बड़ बहादुर हज्वा लोग अउर हिन्दू मरिघादा के ढेर ख्याल बाये तुहरे लोगन के, त कलकत्ते-लाहौर जाये के चाही,"² हिन्दू ग्रामीण समाज की मानसिकता को प्रकट करते हैं । उपन्यास के इन प्रकरणों से मासूम रजा ने विभाजन के पहले प्रारम्भ साम्प्रदायिकता के सन्दर्भ में मुस्लिम समाज की मानसिकता को स्पष्ट करते हुए आम हिन्दू के उससे सम्बन्ध को भी रेखांकित किया है । इस प्रकरण से जो तथ्य सामने उभर कर आते हैं वह यह कि जब सम्पूर्ण उत्तर-पूर्वी भारत दंगे फसादों की आग में जल रहा था तो भी ग्रामीण समाज उससे खास प्रभावित नहीं हुआ था । छुट-पुट विध्वंसात्मक कार्य क्रमों का संचालन स्वामी जी जैसी वाह्य शक्तियाँ ही कर रही थीं परन्तु वो एक सीमा से आगे सफलता प्राप्त नहीं कर पा रही थीं ।

लेकिन कलकत्ते में प्रारम्भ होने वाले साम्प्रदायिक दंगों की प्रति-क्रिया देश के शहरी क्षेत्रों से होकर अन्त में ग्रामीण जीवन को भी धीरे-धीरे प्रभावित करने लगीं । अपवाहों ने इन्हें और अधिक बल प्रदान किया । जगह-जगह साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे । कलकत्ते की खबरें गंगौली में भी पहुँच रही थीं । असमंजस के साथ पाकिस्तान के प्रश्न को लेकर, उत्पन्न साम्प्रदायिक

1- राही मासूम रजा, आधा गाँव, पृष्ठ 279

2- वही, पृष्ठ 283

दंगों के कारण लोग भयातुर होने लगे थे । मौलवी बेदार जी प्रतिक्रिया इस सम्बन्ध में दृष्टव्य है, "जेह दिन से ई जिनवा पाकिस्तान की बात निकालिस है तेही दिन से माथा ठनका । अब देख ल्यो, कलकत्ते में बलबा भया । छपरे में भया इ चार दिन में गाजीओपुर में हो जैय है यह" ¹ चारों तरफ इतने बड़े-बड़े शहर धाय-धाय जल रहे थे कि उस आग में दिल्ली, बम्बई, लाहौर, अमृतसर, कलकत्ता, ठाका, चटगाँव, सैदपुर खवल पिण्डी, लाल क़िला, जामा मस्जिद गोल्डन टेम्पुल, जलियाँवाला बाग हाल बाजार, उर्दू बाजार अनार कली.....अनार कली नाम सगीर फातमा का धा या रजनी कौर या निलिनी बनर्जी था । अनार कली की लाश खेत में थी, सड़क पर थी, मस्जिद और मन्दिर में थी और उनके बदन पर नाखूनों और दाँतों के निशान थे ।" ² अन्ततः विभाजन हुआ ।

यह विभाजन देश का तो हुआ ही, परन्तु इसकी जो सबसे कारुणिक परिणति हुई वह यह कि इसने भाई को भाई से, माँ को बेटे से पत्नी को पति से भी अलग कर दिया । इस घरेलू विभाजन को लेखक ने इस प्रकार उभारा है कि मानवीय संवेदना के स्तरों को स्पर्शित कर देता है, "अब हम लोग अपने लड़कन के बाप न रह गये हैं । अब लड़के वे सब हमारे लोगन के बाप हो गये हैं । हम बहुत क्हा कुददन से-ए बेटा, तुहे पाकिस्तान जाये की कउन जरूरत है त बोले कि हिंयाँ मुसलमानन की तरक्की का रास्ता बन्द हो गया है । अब ओ अपने बाल बच्चन को भी ले जायें त इतमेनान की सांस लें । एक बशीर ! ई पाकिस्तान त । हिन्दू मुसलमानन को अलग करे को बना रहा । बाकी हम त ई देख रहें कि मिथी-बीबी, बाप-बेटा अऊर भाई बहिन को अलग कर रहा । कुददन चले गये त ऊ मुसलमान है, अऊर

1- डाँठ राही मासूम रजा, आधा गौव, पृष्ठ

2- वही, पृष्ठ 292

हम मियाँ रह गये त का हम, खुदा न करे हिन्दू हो गये ।"¹ हकीम साहब के द्वारा अदा किए गये इस पूरे संवाद में जहाँ एक तरफ रिश्तों के बिखरने का दर्द उभरता है वहीं दूसरी तरफ पाकिस्तान सम्बन्धी मुस्लिम मानसिकता की आर्थिक अवधारण स्पष्ट हो जाती है । वास्तव में पाकिस्तान की घोषणा हो जाने के बाद भी मुसलमानों के पाकिस्तान जाने में आर्थिक कारणों की भूमिका भी महत्व पूर्ण है । हकीम साहब जैसे एक साधारण जमींदार द्वारा पाकिस्तान के अस्तित्व पर किया व्यंग्य विभाजन के लिए प्रचारित आवश्यकता के खोखले पन को उद्घाटित करते हुए उसके प्रति साधारण मुस्लिम वर्ग की एक बहुत बड़े हिस्से की मानसिकता का झोतक है ।

पाकिस्तान बनने के बाद जो टूटन पारिवारिक विखराव को लेकर मुस्लिम समुदाय को हुई उसका सामना हिन्दुओं को नहीं करना पड़ा स्थानान्तरण के समय हिन्दुओं के पूरे परिवार साथ थे, वे या तो मारे गये या पहुँच गये, जो बिछड़ गये तो मार डाले गये । लेकिन मुसलमानों के परिवार का एक बहुत हिस्सा ऐसा था जिसके कुछ सदस्य पाकिस्तान चले गये कुछ हिन्दुस्तान में ही रह गये । कुछ एक देश के नागरिक हो गये कुछ दूसरे देश के । और अपने साथ छोड़ गये अनेक सवाल, ' रह गयी पत्नियाँ का क्या होगा, बाप के बिना बच्चों का भविष्य क्या होगा इत्यादि ।²

पाकिस्तान बन जाने के कारण टूट चुके मुसलमानों को आने वाली अप्पाहें और अधिक भयभीत कर रही थीं । अमृत सर और जालंधर की मीस्जदों को तोड़कर मन्दिर बनाने की खबरें आ रही थीं । दिल्ली के

1- डॉ० राही मासूम रजा, आधा गाँव, पृष्ठ

2- वही, पृष्ठ 302

इमाम बाड़े पर सिक्खों द्वारा कब्जे की बात सुनाई पड़ रही थी ।¹ बचे हुए मुसलमानों को काट देने की अप्पाहों का जोर था ।

मुसलमान बादशाहों ने अगर मंदिर तोड़कर मस्जिद बनवा लिया था । देवी-देवताओं के ब्रूतों को छुड़िइयों में स्तेमाल किया तो इसमें आम जनता का क्या कुसूर था ? फुन्नन मिथों का यह तर्क कि, " काहेन मारा सभम ने पकड़ के ऊ बहन चोद बादशाह को;.....ल्यों ! मंदिर तोड़े बादशाह लोग और गौड़ मरावे हम.....वाह !² के द्वारा लेखक ने एक ऐसा सवाल उठाया है जिसका जवाब न तो साम्प्रदायिकता के पीछे कार्य करने वाली शक्तियों के पास था न धर्म के पास । भोली भाली रब्बन बी का तर्क कि "अच्छा, हम ई पूछ रहे कि जब तू ही लोग अट देके पाकिस्तान बनाए हो तो उहे ओहवा देके बिगाड़ द्यो माटी मिले को !" पाकिस्तान को निर्धकता की वास्तविकता प्रकट करते हुए पाकिस्तान के समर्थकों पर गहरी चोट करता है ।

"ई [पाकिस्तान] वहन चोदन का तोहफा है ।"³ के अतिरिक्त सम्पूर्ण उपन्यास में पाकिस्तान निर्माण के पीछे कार्य करने वाली शक्ति अंग्रेजों का उल्लेख नहीं किया है । सम्भवतः इसके पीछे लेखक की जन सामान्य की मानसिकता का चित्रण रहा है ।

जहाँ तक विभाजन और कांग्रेस के सम्बन्धों का प्रश्न है लेखक ने दोनों के सम्बन्धों का विवेचन भी संक्षिप्त किया है । बँटवारा हो जाने के पश्चात कांग्रेस और कांग्रेसियों के चरित्र तथा कांग्रेसी राजनीति और

1- राही मासूम रजा, आधा गौंव, पृष्ठ 302

2- वही, पृष्ठ 330

3- वही, पृष्ठ 290

उसके समाज पर पड़े प्रभावों का परसुराम के चरित्र द्वारा रेखांकित किया है । एम० एल० होने के बाद "जब परसुराम आता गंगौली में, तो शाम को उसका दरबार लगता । उसका दरबार गाँव का सबसे बड़ा दरबार होता । इसके दरबार में लखपीत भी आते और फाकामस्त सैयद साहिबान भी । ये लोग कुर्सियों पर बैठते और सिगरेट पीते और रेडियो सुनते । उनसे थोड़ी दूरी पर गाँव तो गरीब गुस्बा होते, जो पहले की ही तरह जमीन ही पर उकड़ बैठते, खैनी खाते और बीड़ी पीते उनकी किस्मत में जमीन पर ही बैठना लिखा था.....और परसुराम जब यह कहता कि फुल्लो उसके इलाके या उसके गाँव में नहीं हो सकती तो मियाँ लोगों का पूरा वजूद लरज उठता ।"

आजादी मिलने के पश्चात समाज में परिवर्तन आये परन्तु ये बाह्य थे । गरीब अब भी गरीब था उसकी स्थितियों में कोई अन्तर नहीं आया । जमींदारी टूटी लेकिन जमींदारों का स्थान ले लिया नेताओं ने । व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं आया । अधिकार व्यक्ति तक अब भी सीमित था न कि समाज के हाथों ।

स्वतन्त्रता से पहले के कांग्रेस और मुस्लिम सम्बन्ध आर्थिक स्तर पर आधारित थे । मुस्लिम जमींदारों का लीग की तरफ झुकाव और कांग्रेस के साथ खिंचाव पाकिस्तान के प्रश्न को लेकर नहीं था अपितु कांग्रेस के कारण जमींदारी जाने के भय से था । इसीलिए "बड़ी बूढ़ियों ने गिड़-गिड़ाकर दुआयेँ माँगी थीं कि अंग्रेज लौट आयेँ । हर नमाज में कांग्रेस को वद्दुआयेँ दी गयीं ।" लेखक द्वारा कांग्रेस के प्रति मुसलमानों के विरोध के जिन कारणों की तरफ संकेत किया है वह जमींदार मुसलमानों की भावना तक ही सम्बन्धित है । मुसलमानों का जमींदारों के अतिरिक्त जो बहुत बड़ा वर्ग खिलाफ हुआ उसका मूल कारण था कांग्रेस का उभरता अवसरवादी हिन्दू

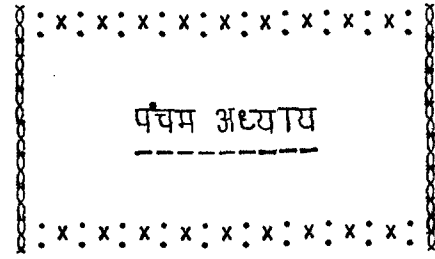
चरित्र । 1946 के चुनावों में लीग की भारी विजय के पीछे वास्तव में यही कारण अधिक प्रभावी रहे लेकिन लेखक ने इसका उल्लेख नहीं किया है यदि हुआ भी है तो प्रच्छन्न रूप में । भीष्म साहनी ने अवश्य कांग्रेस के प्रति मुस्लिमों की यह अवधारणा कि कांग्रेस हिन्दुओं की जमात है का यथेष्ट विवेचन किया है ।

जो कांग्रेस की हिन्दू रूझान 'आधा गाँव' में है उसका पाकिस्तान की मानसिकतासे सीधा सम्बन्ध नहीं दिखाया गया है अपितु उसके द्वारा कांग्रेस के राजनीति की वास्तविकता को दर्शाया गया है । कासिमा बाद के धाने के घेराब में गोबरधन, क्षिमुनियाँ और हरपाल सिंह के साथ फुन्नन मिर्चा का 15 वर्षीय पुत्र मुमताज भी शहीद हुआ था । इसी घेराब के कारण फुन्ननमिर्चा ने माफी के बजाय जेल जाना बेहतर समझा था । परन्तु बाद में इन शहीदों को दी जाने वाली श्रद्धांजलि में कांग्रेस द्वारा आयोजित जलसे में कासिमा बाद की पवित्र धरती पर अपने रक्त से तिलक लगाने वाले सपूतों में गोबरधन और हरपाल के साथ मुमताज का नाम नहीं था । इस पर फुन्नन मिर्चा द्वारा व्यक्त की गयी प्रतिक्रिया कि, स साहब ! हिंओं एक दो हमरहू बेटा मारा गया रहा । अइसा जना रहा कि कोई आपको ओका नाम न बताइस ओका नाम मुन्ताज रहा !² के द्वारा लेखक ने कांग्रेस द्वारा स्वतन्त्रता संघर्ष में मुस्लिम भूमिका के प्रति किए गये व्यवहार पर करारा व्यंग्य किया है । इस पूरे प्रकरण में कांग्रेस का मुस्लिमों के प्रति व्यवहार, मान्यता तथा उसके और मुस्लिम सम्बन्धों का वास्तविक रूप ग्रासिक रूप से स्पष्ट हुआ ।

1- राही मासूम रजा, आधा गाँव, पृष्ठ 295

2- वही, पृष्ठ 295

इस प्रकार उपर्युक्त विश्लेषण के प्रकाश में कहा जा सकता है कि राही गायूम राजा ने अन्धगोश्व में मोहरम को केन्द्र में रखकर गंगौली के सामाजिक जीवन के चित्रण के माध्यम से विभाजन कालीन मुस्लिम मानसिकता को यथार्थ के स्तर पर उद्घाटित किया है । इस क्रम में उन्हें जमींदारी उन्मूलन का मुस्लिम समाज पर प्रभाव साम्प्रदायिकता के सन्दर्भ में अलगाववादी तत्वों की भूमिका, कांग्रेस की राजनीति का यथार्थ तथा विभाजनोपरान्त पारिवारिक विघटन से उपजी त्रासद स्थितियों से जूझते मुस्लिम समाज के कथात्मक इतिहास को प्रस्तुत करने में यथेष्ट सफलता प्राप्त हुई है । मुस्लिम समाज के इस चित्रण में उनसे जुड़ी हिन्दू मानसिकता की भी पतें खुली हैं ।



उपसंहार =====

स्वतन्त्रता के बाद भारत एक लम्बे समयान्तराल को तैय कर चुका है । इस अवधि में इसने विकास के क्षेत्र में अनेक बाधाएँ पार कर ली हैं, परन्तु साम्प्रदायिकता की बाधा जिसका जन्म राष्ट्रवाद के विकास के क्रम में जन्में स्वाधीनता आन्दोलन की प्रक्रिया के मध्य से हुआ और उसके कारण राष्ट्र को विभाजन जैसी सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं पारिवारिक मूल्यों को विघटित करने वाली घटना परिणाम के रूप में प्राप्त हुई । वह आज भी विद्यमान है । इसलिए विभाजन का महत्व आज भी निर्विवाद है । मूल्यगत परिवर्तनों की तरफ साहित्यकार सदैव आकृष्ट होते रहे हैं । स्वतन्त्रता के बाद विकसित होने वाली जीवन दृष्टि पर विभाजन के प्रभाव को भारतीय जनमानस के सांस्कृतिक, सामाजिक और नैतिक मूल्यों पर आज भी देखा जा सकता है ।

विभाजन सम्बन्धी विस्तृत विवेचन से जो तथ्य सामने आते हैं वह यह कि, भारतीय स्वाधीनता संग्राम की प्रथम किरण के रूप में सन् 1857 के संग्राम की भूमिका का महत्व राष्ट्रवाद के विकास या परोक्ष रूप से स्वाधीनता संग्राम के रूप में न होकर भारतीय जनता के द्वारा ब्रिटिश राज्य के प्रति आक्रोश की चिन्गारी और बहादुर शाह जफर के नेत्रित्व में एकत्रित होती हिन्दू-मुस्लिम शक्ति के रूप में है ।

जहाँ तक भारत में राष्ट्रवादी विचार धारा के विकास का प्रश्न है, इसका स्रोत ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सुदृढ़ हो जाने के बाद उनके निजी स्वार्थों हेतु साम्राज्यवादी व्यवस्था में हुए परिवर्तनों में निहित है । ब्रिटिश शासन के पूँजीवादी स्वार्थों के तहत औद्योगिक विकास हेतु रेलवे, आधुनिक शिक्षा, डाकतार और छापेखाने के प्रारम्भ ने इसमें योगदान दिया । इस

दिशा में 19 वीं शताब्दी में प्रारम्भ हिन्दू और मुस्लिम धार्मिक सुधारवादी संस्थाओं का योगदान लक्षित नहीं होता है । वास्तव में ये सुधारवादी आन्दोलन सम्प्रदायगत पुनरोत्थानवादी आन्दोलन थे । राष्ट्रीय एकता के सन्दर्भ में उनकी भूमिका सिर्फ ये रही है कि धार्मिक पुनरोत्थानवाद की पृथक-पृथक भूमिकाओं के अनन्तर केवल चिन्तन पद्धतियाँ एक सी रही हैं ।

धीरे-धीरे पुनरोत्थानवादी मानसिकता विकसित होकर साम्प्रदायिक मानसिकता में परिवर्तित हो गयी । जिसने भारत की एकता के लिए विध्वंसकारी मार्ग प्रशस्त किया । इस पुनरोत्थानवादी मानसिकता के विकास से दोनों सम्प्रदायों के मध्य उत्पन्न खाई को ब्रिटिश शासन ने और भी चौड़ा किया ।

कांग्रेस का जन्म अंग्रेजी शासन के लिए सुरक्षा-कपाट के रूप में हुआ, परन्तु निर्माण काल के कुछ ही समय बाद यह संस्था भारतीय स्वार्थों की प्रवृत्ता सिद्ध होने लगी । लेकिन इसी समय आर्य सभ्यता की सर्वश्रेष्ठता के सिद्धान्त को लेकर एक नये नेतृत्व का वर्ग कांग्रेस में उभरना प्रारम्भ हुआ । परन्तु वास्तव में उनके सिद्धान्त का आधार हिन्दू पुनरोत्थानवाद था । इन लोगों ने भाषायी विवाद, गोरक्षा आन्दोलन इत्यादि साम्प्रदायिक कार्यक्रमों से कांग्रेस के कार्यक्रमों को जोड़ते हुए कांग्रेस को हिन्दू चरित्र की वाहिका का रूप दे दिया । यहीं से मुस्लिम समुदाय और कांग्रेसी हिंदुओं का आपसी टकराव प्रारम्भ हुआ । धीरे-धीरे दोनों सम्प्रदायों के बीच दरार पड़ने लगी ।

दोनों समुदायों की बढ़ती हुई दूरी को और भी अधिक बढ़ाने की प्रक्रिया में अंग्रेजों ने इतिहास के साम्प्रदायिक प्रयोग, दोनों पक्षों की साम्प्रदायिक मांगों को अलग-अलग पराश्रय देकर भेद-भाव और भी अधिक बढ़ा दिया

उसकी इसी नीति के फलस्वरूप मुस्लिम लीग का जन्म हुआ । परन्तु अपने जन्म के कुछ ही वर्षों बाद ये भी साम्राज्यवाद विरोधी संस्था हो गयी । इस दिशा में कांग्रेस के समान्तर संस्था के रूप में कार्य करने लगी ।

उद्देश्य की एकता के कारण प्रथम विश्व युद्ध के बाद खिलाफत के प्रश्न को लेकर दोनों के एक दृष्टि कोण एवं अनेक अन्य मुसलमानों द्वारा कांग्रेस को दिये जाने वाले भरपूर सहयोग के कारण हिन्दू-मुस्लिम एकता के एक नये युग के प्रति आशा उत्पन्न हुई । परन्तु एक बार फिर हिन्दू पुनरोत्थानवाद सामने आया । हिन्दू महासभा की सक्रियता के साथ कांग्रेसी नेतृत्व स्वयं इससे उभर नहीं पाया था । शुद्धि आन्दोलन, खिलाफत एवं मोपला किसान विद्रोह को साम्प्रदायिक रूप प्रदान करने के हिन्दूवादी प्रयासों से आशा की किरण क्षीण पड़ गयी । दूरी और भी बढ़ गयी ।

समय-समय पर एकता के अनेक अवसर और भी आये, परन्तु कांग्रेस की असमंजस भरी नीति और हिन्दू हितों के प्रति उसके एक वर्ग के झुकाव ने इन अवसरों को भी समाप्त कर दिया । सन् 1937 के आम चुनाव में समझौते को तोड़ने वाली कांग्रेस की धोके नीति ने हिन्दू-मुस्लिम एकता की अन्तिम आशा को भी समाप्त कर दिया । 1940 का वर्ष समाप्त होते-होते मुसलमानों द्वारा नये राष्ट्र की माँग का स्वर उठने लगा । 1946 के चुनावों में लीग को प्राप्त भारी बहुमत ने इस स्वर को बहुत अधिक बल दिया । अब तक ब्रिटिश शासन की स्वयं की स्थिति भी ऐसी हो गयी थी कि भारत की स्वतन्त्रता को बहुत अधिक समय तक टाले रखना उसके लिए मुश्किल हो रहा था । 1920 के दशक के हिन्दुत्व की डोर कट्टर पंथी सावाकर और गोवलकर के हाथों में आकर उग्रवाद का रूप धारण कर गयी और बढ़ती हुई मुस्लिम शक्ति के कारण दोनों सम्प्रदाय खुलकर आमने सामने आ गये । साम्प्रदायिक दंगे प्रारम्भ हो गये ।

यद्यपि अब तक छूट-पुट रूप से भावुकता भरे स्वरों के अतिरिक्त कांग्रेस का समीकित स्वर अलगाव के विरुद्ध था, परन्तु दक्षिण भारत के कांग्रेसियों द्वारा विभाजन को खुलकर प्राप्त होने वाला समर्थन, नेताओं द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त की घातों, अंग्रेजों द्वारा भारत को विभाजित कर देने के लिए बना ली गयी 'मनःस्थिति एवं सम्प्रदायिक दंगों' की अतिरिक्त विभाजन को अनिवार्य बना दिया ।

भारतीयों की चिर प्रतीक्षित प्रतीक्षा भारत को मिली स्वतन्त्रता के रूप में पूर्ण हुई, परन्तु साम्प्रदायिकता के दानव ने इसे अपने जबड़े में लेकर टुकड़े-टुकड़े कर दिये । स्वतन्त्रता मिलने के बाद भी साम्प्रदायिकता का ज्वार धमने के बजाय बढ़ता ही गया । दंगे विकट रूप धारण कर पंजाब और कलकत्ते की धरती से प्रारम्भ हुए । बदले की भावना एवं अप्पाहों से प्रेरित हो इनका विस्तार भारत के बहुत बड़े भू-भाग तक हो गया । इनसे प्रभावित हिन्दू-मुस्लिम मानसिकता का जो रूप सामने आया सामान्य दिनों में तो उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी । शासन तन्त्र के विभिन्न अंग, राजनीतिज्ञ से लेकर सेना तक अपने कर्तव्य से च्युत होकर हिन्दू और मुसलमान के खानों में विभक्त हो गयी । मानवता कालातीत हो गयी । एक देश से दूसरे देश में पलायन की चेष्टा में लाखों लोग मारे गये या शरणार्थी हो गये । स्त्रियों के साथ बलात्कार उनका अपहरण, बच्चों का निर्ममता पूर्वक खून तो उन दिनों के दैनिक कार्यक्रम के रूप में थे ।

विषमता की इन्हीं युगीन परिस्थितियों से प्रभाव ग्रहण करके अनेक साहित्यकारों की कृतियाँ सामने आयीं । भीष्म साहनी का उपन्यास 'तमस' और राही मासूम रजा का उपन्यास 'आधा गाँव' भी इसी शृंखला की एक कड़ी के रूप में हैं ।

‘तमस’ में लेखक ने साम्प्रदायिकता के सन्दर्भ में कार्य करने वाली शक्तियों को चित्रित करते हुए नगरीय और ग्रामीण मानसिकता को उद्घाटित करने का प्रयास किया है । इसी क्रम में मुस्लिम मानसिकता के भी कुछ बंद खुले हैं । ‘आधा गाँव’ में साम्प्रदायिकता और विभाजन की विभीषिका से पीड़ित मुस्लिम मानसिकता के चित्रण पर बल दिया गया है । इस उपन्यास में विभाजन के पीछे कार्य करने वाली राजनीतिक भूमिका पर नाम मात्र का विचार है ।

‘तमस’ के माध्यम से भीष्म साहनी ने साम्प्रदायिकता के विकास के सन्दर्भ में अंग्रेजों की भूमिका को महत्वपूर्ण स्थान दिया है । भारत में अलगाववादी तत्वों को पहचान कर उसे और भी उकसाने की प्रक्रिया का चित्रण उपन्यास में यथार्थ के धरातल पर निपेक्ष रूप से हुआ है । भीष्म साहनी के अनुसार भारत में अलगाववादी मानसिकता विद्यमान थी । अंग्रेजों ने शासक की हैसियत से उस पर नियन्त्रण के बजाय उसको बढ़ाया । ‘आधा-गाँव’ में राही मासूम रजा ने इस प्रश्न से स्वयं^{को} दूर रखा है ।

कांग्रेसी राजनीति के सन्दर्भ में दोनों उपन्यासों में विचार किया गया है । भीष्म साहनी स्वयं कांग्रेस से कुछ समय के लिए जुड़े रहे हैं । कांग्रेस में अवसरवाद, आपसी असहमति, उसका हिन्दू चरित्र, स्थानीय नेताओं के चरित्र-चित्रण के माध्यम से ‘तमस’ में बखूबी उभरा है । कांग्रेस में बहुत से लोग ऐसे भी थे जो लोग निस्वार्थ भावना से कार्य कर रहे थे, परन्तु उनकी आवाज दब कर रह जाती थी । ‘आधा गाँव’ में यह तथ्य स्पष्ट हुआ है कि मुस्लिम समुदाय के एक वर्ग के कांग्रेस से विरोध करने का कारण उसके द्वारा जमींदारी का विरोध रहा है । आजादी के बाद कांग्रेसी नीति पर भी राही मासूम रजा ने दृष्टि डाली है । इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट हुआ है कि चेहरे बदल गये व्यवस्था नहीं ।

भीष्म साहनी का प्रारम्भिक वातावरण आर्य समाज से संचालित रहा है इसी लिए साम्प्रदायिकता और विभाजन के सन्दर्भ में हिन्दू विचार धारा और संगठनों की भूमिका यथार्थ के धरातल पर सामने आयी है । निर्वेक्षता के सन्दर्भ में उनकी प्रगतिवादी विचारधारा को रेखांकित किया जा सकता है । उनके अनुसार साम्प्रदायिकता को विकीसत करने में हिन्दू उग्रवादी संगठनों की भूमिका प्रभावी रही है । ये संगठन और उनकी कार्य विधि पूर्वाग्रह से प्रेरित समाज विरोधी रही है । इसने नवयुवकों को धर्म एवं हिन्दुत्व के नाम पर भड़का कर उग्रवाद के लिए प्रेरित किया । हिन्दू उग्रवाद के समान्तर मुस्लिम उग्रवाद को भी चित्रित किया गया है, परन्तु इस चित्रण में गहराई का आभाव है । राही मासूम रजा भी रूढ़िवादी परम्परा में पले बढ़ परन्तु ये रूढ़ियाँ संस्कारगत थीं विचारगत नहीं । विभाजन के समय अलीगढ़ मुस्लिम गतिविधियों का केन्द्र था । विभाजन के बाद उनका भी, अलीगढ़ से सम्पर्क हुआ । उन्होंने अलीगढ़ के युवकों द्वारा मुसलमानों को भड़काने के कार्य को महत्वपूर्ण माना है । इन लोगों ने अपना कार्य किया भी, परन्तु इसके पीछे वास्तविक कारण आर्थिक बताया है इसी लिए जो वर्ग जमीनदार नहीं था उसका एक बड़ा वर्ग अंत तक कांग्रेस से जुड़ा रहा ।

विभाजन कालीन साम्प्रदायिक दंगों से उत्पन्न ज्वलन्त समस्याएँ जैसे समाप्त होती मानवीयता, समाप्त होता आपसी, विश्वास अफवाह, बदले की भावना, शरणार्थियों की स्थिति, विभाजनोपरान्त टूटे-थिखरे परिवारों का दुख और बदलते मानव मूल्य दोनों उपन्यासों में चित्रित हुए हैं । इन चित्रणों के माध्यम से साम्प्रदायिकता से प्रभावित जनमानस की मानसिकता के एक-एक पर्त खुल जाती है । इन उपन्यासों की यही विशेषता इनके महत्व का कारण है ।

‘तमस’ में धीरे-धीरे दंगों के फैलने की प्रविष्टि, इनका गाँवों की तरफ पलायन, ‘आधा गाँव’ में कलकत्ता और अन्य शहरों से आने वाली साम्प्रदायिक छबरेँ यथार्थ के स्तर पर चित्रित हैं । दोनों उपन्यासकारों ने समान रूप से इस तथ्य पर बल दिया है कि जनसामान्य चाहे वह हिन्दू रहता हो या मुसलमान अन्तिम समय तक इन स्थिति से बचाना चाह रहा था । उसे हिन्दुस्तान या पाकिस्तान से कोई दिलचस्पी नहीं थी । तमस में यह स्वीकार किया गया है कि अन्त में अधिकांश लोग साम्प्रदायिकता की मानसिकता से ग्रसित हो गये परन्तु राही मासूम रजा के अनुसार अन्त तक भी लोग इसकी ज्वाला से बचे रहे ।

विभाजन के कारण सदियों से रहने वाले लोग एक दूसरे से अलग हो गये । अपनी जमीन से जुड़ी यादें, लोग, सब कुछ छूट गया । मुस्लिम परिवार को तो इससे भी अधिक व्यथा का शिकार होना पड़ा । देश के विभाजन ने इनके परिवार को भी बाँट दिया । ‘आधा गाँव’ में चित्रित मुस्लिम परिवार के विघटन से उत्पन्न पीड़ा मन को छूती हुई विभाजन की निस्सारता को प्रकट करती है ।

त्रासद स्थितियों के बीच ठंडक प्रदान करने वाली सकारात्मक शक्तियाँ भी थीं । वास्तव में यदि ये शक्तियाँ न होती, हिंसा का उत्तर हिंसा ही होती तो इसका क्या अन्त था । ‘तमस’ में इस प्रकार के सकारात्मक चरित्र को उद्घाटित करने वाले पात्रों में जनरैल सिंह, बक्शी जी, खुदा वक्श और राजो इत्यादि को देखा जा सकता है । सामाजिक संस्कृति के मध्य से उभरे ‘आधा गाँव’ के फुन्नन मिया पृथ्वीपाल सिंह शिंगुरिया इत्यादि भी इसी श्रेणी के पात्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं । ये पात्र अमानवीयता के बीच मानवीय स्वर का घोष करते हुए साहित्यकारों की विघटन के दिनों में सँघटनात्मक भूमिका की पुष्टि करते हैं ।



परिशिष्ट - I

पुस्तक-सूची

राही मासूम रजा की मौलिक कृतियाँ

- ॥1॥ अजनबी शहर अजनबी रास्ते ॥काव्य संग्रह॥, सईद पब्लिकेशन इलाहाबाद।
- ॥2॥ आधागाँव ॥उपन्यास॥, 1989, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली ।
- ॥3॥ ओस की बूँद ॥उपन्यास॥, 1969, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली ।
- ॥4॥ टोपी शुक्ला ॥उपन्यास॥, 1969, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली ।
- ॥5॥ दिल एक सादा कागज ॥उपन्यास॥, 1973, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली।
- ॥6॥ सीन: 75 ॥उपन्यास॥, 1982, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली ।
- ॥7॥ हिम्मत जौनपुरी ॥उपन्यास॥, 1969, शब्दकार दिल्ली ।

भीष्म साहनी की मौलिक कृतियाँ

- ॥8॥ अपनी बात ॥निबन्ध संग्रह॥, 1990, वाणी प्रकाशन दिल्ली ।
- ॥9॥ कीड़ियाँ ॥उपन्यास॥, 1970, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली ।
- ॥10॥ झरोखे ॥उपन्यास॥, 1967, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली ।
- ॥11॥ तमस ॥उपन्यास॥, 1988, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली ।
- ॥12॥ पटोरियाँ ॥उपन्यास॥, 1983, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली ।
- ॥13॥ मेरे भाई बलराज ॥जीवनी॥, 1985, नेशनल बुक ट्रस्ट आफ इंडिया ।
- ॥14॥ चाङ्-चू ॥कहानी संग्रह॥, 1982, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली ।
- ॥15॥ शोभायात्रा ॥कहानी संग्रह॥, 1981, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली ।

सहायक ग्रन्थ

- ॥16॥ अग्रवाल शन्नो देवी, स्वतंत्रोत्तर हिन्दी उपन्यासों में समकालीन राजनीति, 1984, ग्रन्थायन अलीगढ़ ।

- § 17§ कालिन्स लैम्पयर; आधीरात की आजादी, 1976, गाइड प्रकाशन अहमदाबाद ।
- § 18§ किदवई बेगम अनीस; आजादी की छांव में, 1990, नेशनल बुक ट्रस्ट आफ इंडिया दिल्ली ।
- § 19§ जावेदकर शंकर दत्तात्रेय; आधुनिक भारत, 1961, सस्ता साहित्य मंडल दिल्ली ।
- § 20§ जैदी सैयद जुहेर अहमद; उपन्यासकार राही मासूम रजा: कृतित्व एवं उपलब्धियाँ §अप्रकाशित शोध ग्रन्थ§, अलीगढ़ मुस्लिम विश्व-विद्यालय अलीगढ़ ।
- § 21§ तिवारी डी० डी०; हिन्दी उपन्यास स्वातन्त्र संघर्ष के विविध आयाम, 1985, तक्षिशला प्रकाशन दिल्ली ।
- § 22§ दत्त रजनी पाम; आज का भारत, 1977, दि मैकमिलन इंडिया लिमिटेड दिल्ली ।
- § 23§ देसाई ए० आर०; भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, दि मैकमिलन इंडिया लिमिटेड दिल्ली ।
- § 24§ नरेन्द्र मोहन; आधुनिक हिन्दी उपन्यास, 1975, दि मैकमिलन इंडिया लिमिटेड दिल्ली ।
- § 25§ - - - - सिफ़ा बदल गया, 1975, सीमान्त पब्लिकेशन दिल्ली ।
- § 26§ निजामी खलीक अहमद; सर सैयद अहमद खाँ, 1978, भारत सरकार प्रकाशन विभाग दिल्ली ।
- § 27§ नेहरू जवाहर लाल; मेरी कहानी, 1965, सस्ता साहित्य मंडल दिल्ली ।
- § 28§ पदगुप्त पी० के०; हिन्दी उपन्यास साहित्य पर वैचारिक आन्दोलनों का प्रभाव, 1986, पंजन पब्लिकेशन गङ्गमुक्तेश्वर ।

- ॥29॥ पानेरी हेमचन्द्र; स्वतंत्रोत्तर हिन्दी उपन्यास: दूसरा-संग्रह,
1974, संधी प्रकाशन जयपुर ।
- ॥30॥ पारीख द्वारिका दास उत्तमचन्द्र दीपचन्द्र; सरदार पटेल के भाषण,
1950, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद ।
- ॥31॥ प्रेमचन्द्र; विविध प्रसंग भाग-2; 1962, हंस प्रकाशन इलाहाबाद ।
- ॥32॥ ब्रीचर माइकल; नेहरू राजनीतिक जीवन चरित्र, 1961, मोतीलाल
बनारसीदास दिल्ली ।
- ॥33॥ मधुरेश सम्प्रीत, 1983, धरती धरती प्रकाशन बीकानेर ।
- ॥34॥ मुहम्मद फरीदुद्दीन; राही मासूम रजा के उपन्यासों का समाज
शास्त्रीय अध्ययन, 1984, अखिल चरण जैन एवं संतीत दिल्ली ।
- ॥35॥ रणसुभे सूर्यनारायण देश विभाजन और हिन्दी कथा साहित्य, 1987,
संचयन कानपुर ।
- ॥36॥ रामगोपाल; स्वतन्त्रता पूर्व हिन्दी संघर्ष का इतिहास, 1964,
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ।
- ॥37॥ रायविवेकी; हिन्दी उपन्यास उत्तरशती की उपलब्धियाँ, 1983,
राजीव प्रकाशन इलाहाबाद ।
- ॥38॥ लोहिया राममनोहर; भारत विभाजन के गुनहगार, 1990, लोक
भारती प्रकाशन इलाहाबाद ।
- ॥39॥ विपिनचन्द्र; आधुनिक भारत, 1976, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान
और प्रशिक्षण परिषद दिल्ली ।
- ॥40॥ - - - ; भारत का स्वतंत्रता संघर्ष 1990, हिन्दी माध्यम
कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय नई दिल्ली ।
- ॥41॥ - - - ; स्वतंत्रता संघर्ष, 1988, नेशनल बुक ट्रस्ट आफ इंडिया ।

- ॥42॥ वंशीधर; हिन्दी के आंचलिक उपन्यास: सिद्धान्त और समीक्षा,
1983, भाषा प्रकाशन दिल्ली ।
- ॥43॥ सिन्हा सच्चिदानन्द; भारतीय राष्ट्रियता और साम्प्रदायिकता,
1990 मराल प्रकाशन मुजफ्फर पुर ।
- ॥44॥ सिंह अयोध्या; भारत का मुक्ति संग्राम, 1977, दि मेक्किमलन
इंडिया लिमिटेड दिल्ली ।
- ॥45॥ सिंह विजयेन्द्र पाल; भारतीय राष्ट्रवाद एवं आर्य समाज आन्दोलन,
1977, वि.भू. प्रकाशन साहिबबाबाद ।
- ॥46॥ सोनवड़े चन्द्रभानु; हिन्दी उपन्यास विविध आयाम, 1977, पुस्तक
संस्थान कानपुर ।
- ॥47॥ सोबती कृष्णा; हम हशमत, 1977, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली ।

अंग्रेजी ग्रन्थ

- ॥48॥ आजाद अबुल कलाम; इंडिया विन्स फ्रीडम, 1957, ओरियन्टल
लॉन्गमैनस बम्बई ।
- ॥49॥ चक्रवर्ती गार्गी; गांधी: ए चैलेन्ज टू कम्युनैलिज्म, 1987, इस्टर्न
बुक सेन्टर दिल्ली ।
- ॥50॥ दुर्गादास; इंडिया फ्रॉम कर्जन टू नेहरू एण्ड आफ्टर, 1969, कार्लिनस
एस० टी० जॉन्स प्लेस लंदन ।
- ॥51॥ मजूमदार आर० सी०; स्ट्रगल फॉर फ्रीडम भाग-11, 1969,
भारतीय विद्या भवन ।
- ॥52॥ मोसले थियोनार्ड तास्ट डे आफ ब्रिटिश राज, 1961, विन्हेन
फील्ड एण्ड निदर्शन लंदन ।

पत्र-पत्रिकाएँ

- ॥अ॥ असली भारत, नवम्बर 1990
- ॥ब॥ आलोचना, अप्रैल/ दिसम्बर 1974
- ॥स॥ धर्मयुग, 6 अगस्त 1989
- ॥द॥ मधुमालती, फरवरी 1988
- ॥य॥ योजना, 15 अगस्त 1988
- ॥र॥ सारिका, अगस्त 1990

परिशिष्ट - 2

अनुक्रमणिका

अ	इ
अजनबी शहर अजनबी रास्ते-101	इलबर्ट-19, 20
अजमली अजमल-97	इलाहाबाद-94, 98
अमृतसर आ गया-86	इलाहाबादी तेग-97
अली गजनफर-131	इस्सर देवेन्द्र-87
अलीगढ़-22, 98, 101, 102, 130, 131, 145	ई
अलीगढ़ ओरिएन्टल कालेज-13	ईस्ट इंडिया कम्पनी-15
अलीगढ़ तहरीक-26	उ
अली बन्धु-26	उर्दू-ए-मुअल्ला-100
अली मौलाना मु0-32	ए
अली लियाकत-57, 62	एक पैसे का सवाल है बाबा-102
अवध-5	एन आफ कंसेट बिल-24
अहमदिया आन्दोलन-14	एडवर्ड विलियम-2
असहयोग-77	एटली-55, 58
आ	ओ
आजाद मौलाना अबुलकलाग-36, 37,	ओस की बूंद-102
आजादी की छांव में-69	क
आब्दी बशीर हसन-20, 23	कम्युनिस्ट पार्टी-87
आम्सरेकेट-2	कमलेश्वर-88, 105
आर्य समाज-2, 11, 151	कल्चरल फोरम-87
	कलकत्ता-5, 6, 72, 86, 133, 139
	कलौपुर-92

कायस्थ सभा-12
 कारवाँ-98
 कांग्रेस-20, 21, 22, 23, 24, 25,
 26, 27, 32, 33, 35, 37, 38,
 39, 40, 41, 46, 48, 50, 51,
 52, 53, 54, 55, 56, 57, 59,
 60, 78, 83, 87, 113, 116,
 117, 128, 136, 137, 138,
 140, 141, 142
 किदवाई बेगम अनीस-66, 67,
 71, 74
 क्रिप्समिशन-78
 कुमार योगेश-87
 कैबिनेट मिशन-55
 कोकनद अधिवेशन-32
 ख
 खाँ सरसैयद अहमद-13, 25, 26,
 27, 28, 31, 32, 36
 खाँ हकीम अजमल-36
 खिलाफत आन्दोलन-36, 37,
 77, 142
 ग
 गणपति समारोह-24
 गंगौली-96, 125, 127, 129,
 130, 131, 133, 139

गाजीपुर-90, 93, 97
 गाँधी-37, 38, 39, 48, 49, 51, 53,
 59, 50, 77, 78, 85, 111, 113
 गुप्त भैरवप्रसाद-105
 गुरुदत्त-105, 106
 गूगी जिन्दगी-102
 गोरखपुरी फिदाक-97
 गोरक्षा आन्दोलन-25, 141
 गोवलकर-44, 142
 घ
 घोष अरविन्द-23
 च
 चैम्बर्स आफ कामर्स-51
 चुन्दरीगर आई० आई०-59
 ज
 जफर बहादुर शाह-4, 6, 7, 140
 जमाल मसूद अखतर-97
 जिन्नत-34, 35, 41, 42, 47, 53, 54,
 55, 62, 131
 जैदी शैलेश-102
 जोशी श्याम मनोहर-87
 जौनपुरी वामिक-97
 झ
 झारोखे-8, 81, 89
 झाँसी की रानी-4

झूठा सच-105

ट

टोपी शुक्ला-122

ठ

ठेकमा बिजौली-90

ड

डफरिन 21, 29

डल हौजी-4

डा0 अन्सारी-4

त

तट के बन्धन-105

तमस-86, 105, 106, 107, 113,

119, 122, 130, 143, 144, 146

तिलक-23, 24, 30

तिलस्मे होश रूबा-92

तैयब जी बरुद्दीन-26

द

दत्त रजनी पाम-78, , 85

दिल्ली-14, 64, 73, 90, 103,

134

देश की हत्या-105

ध

धर्मपुत्र-105

न

नई कहानियाँ-88, 89

नजीर मौलाना-13

नाना साहब-4

निश्चार अब्दुल रब-57

निष्कान्त-105

नीली-6

नेहरू जवाहर लाल-41, 56, 57, 58,

59, 87

नेहरू राजनीतिक जीवन चरित्र-69

नौरोजी दादा भाई-21, 34

प

पटेल-58, 59, 69, 70, 127

परिमल-28

पंजाब-12, 29, 61, 64, 65, 66, 72, 74

पंत गोविन्द वल्लभ-62

प्रभाकर विष्णु-105

प्रार्थना तमाज- 2, 11

पेन जान-18

प्रेमचन्द-38, 92

ब

बनर्जी सुरेन्द्रनाथ-21

बहाई आन्दोलन-14

बंग-भंग-31

ब्रह्मसमाज-11

बानो मेहर-93, 94

बीज-107

ब्रीचर माइकल-69

बेकर जेम्स-30

बोस राजनारायण-29

भ

भटकती राख-89

भाग्य रेखा-89

भारती धर्मवीर-98

म

मंडल जोगेन्द्र नाथ-57

माउन्ट बेटेन-58, 60

मासूम रजा-90, 91, 93, 94, 96, 105,
106, 132, 133, 134, 135, 144, 145

मिर्जागुलाम अहमद-14

मिलस्टुअर्ट-18

मुहब्बत के सिवा-908

मोर्जीनी-100

मोपला विद्रोह-40, 49

मोहन राकेश-88

मोहानी हसरत-39

य

यशपाल-105

यीदव राजेन्द्र-88, 89

यूनाइटेड पैट्रियाटिक एसोसिएशन-26

यूनियनिस्ट पार्टी-64

र

रईस कमर-102

रजा मूनिस-90, 93

रणसुभे-103

रहबर हंसराज-8

राइज आफ नेशनल शोशलिज्म-89

राजामहमूदा बाद-131

राना डे-11, 21

राम बब्बर-99

राय जसवंत-84

राय नवीनचन्द्र-99

राय राजा राय मोहन-8, 9, 10

राय लाला लाजपत-23, 29, 30

राबल पिण्डी-8, 134

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ-68, 74

ल

लार्डमिण्टो-32, 39

लाहौर प्रस्ताव-53

लिनलिथगो-51

लेडी माइल बेटन-59

लेबर पार्टी-51, 54

लौटे हुए मुसाफिर-105, 106

व

वनैकुलर प्रेस ऐक्ट-20

- वर्मा निर्मल-87
 वार्मिक जौनपुरी-97
 वेवेल भाई-22, 58
 वेद कृष्णबलदेव-87
 श
 शरीय तुल्ला हाजी-14
 शाद नरेश कुमार-87
 शास्त्री आचार्य चतुर्सेन-105, 106
 शिब्ली-13
 शिमला परिषद्-53, 54
 शुद्धि आन्दोलन-142
 स
 सत्ती मैया का चौरा-105, 106
 सरनीन सभा-12
 साइमन कमीशन-77
 सावरलर-142
 साहनी बलराज-78, 79, 80,
 83, 88
 साहनी भीष्म-78, 79, 78, 86,
 103, 106, 116, 117, 130, 138
 साहनी ~~धर्म~~ 88
 साहनी हरवंश लाल-78
 सिद्दीकी अतीक अहमद-103
 शिवाजी-24, 25
 सुहरावर्दी-54
 सेन केशवचन्द्र-29
 सोपिस्तसंघ-88, 99
 ह
 ह्यूम-21, 22
 हयात खिजर-64
 हसन राजा मुनीर-90
 हंस-83
 हाउस आफ कामन्स-58
 हिन्दू महा सभा-39, 68,
 119, 142
 हुसेन डा० ऐजाज-97, 98
 हुसेन मादानी-3